पाठ 5

हड़प्पा सभ्यता

पाठ्य-रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सिंधु सभ्यता का स्वरूप

5.2.1 मुख्य विशेषताएँ

5.3 पृष्ठभूमि एवं उद्भव

5.4 कालक्रम

5.5 भौगोलिक वितरण

5.6 अधिवासीय पद्धति

5.7 जीवन निर्वाह पद्धति

5.8 शिल्पगत उत्पादन और व्यापार

5.8.1 शिल्पगत उत्पादन

5.8.2 व्यापार

5.9 धार्मिक विश्वास

5.10 पतन और अंत

5.11 उपसंहार

5.12 सारांश

5.0 उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन आपको निम्नलिखित विषयों में सक्षम बनाता है:

- हड़प्पा सभ्यता के उद्भव, विकास, विशेषताएँ, कालक्रम, भौगोलिक प्रसार इत्यादि की व्याख्या
- हड़प्पा सभ्यता के अधिवासीय पद्धति की समझ
- हड़प्पा सभ्यता के भौतिक अभिलक्षणों जैसे- नागर परियोजना, शिल्पगत उत्पादन, जीवन-निर्वाह पद्धति- कृषि, वाणिज्य इत्यादि की विवेचना
- अब तक ज्ञात उनके सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन की समीक्षा
- हड़प्पा सभ्यता के उदय और अंत संबंधी सिद्धांतों की परख

5.1 प्रस्तावना

सिंधु सभ्यता का नाम लेते ही स्मृति-पटल पर एक ऐसी नगरीय साक्षर संस्कृति की तस्वीर उभरती है जो तीसरी सहस्राब्दी तथा दूसरी सहस्राब्दी के प्रारंभ में सिंधु और उसकी सहायक नदियों के इर्दगिर्द विकसित हुई। इसके प्रथम ज्ञात नगर हैं- हड़प्पा जो सिंधु नदी की सहायिका रावी नदी के सूखे तल के किनारों पर है, और मोहनजोदड़ो जो सिंधु नदी के पड़ोस में ही उसके प्रवाह की दिशा में 570 किलोमीटर पर अवस्थित है। फिर भी, भौगोलिक दृष्टि से इस सभ्यता (जिसे हड़प्पा सभ्यता भी कहते हैं और जो इसका प्रथम ज्ञात स्थल है) में सिंधु क्षेत्र से अधिक हिस्से शामिल थे। यह पूर्व और दक्षिण पूर्व में नदी तटीय निम्न भूमि एवं उत्तर में उच्च भूमि वाले क्षेत्रों और सिंधु-प्रणाली के दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व के तटीय कटिबंध तक फैला था।

5.2 सिंधु सभ्यता का स्वरूप

इस सभ्यता की विविध विशेषताओं पर विचार करने से पहले इसके स्वरूप का उल्लेख करना आवश्यक है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि कौन-से ऐसे तत्त्व हैं जो इसे भारतीय उपमहादेश की अन्य समकालीन संस्कृतियों और पश्चिम एशिया तथा मिस्र के कांस्य युग से अलग करते हैं। सिंधु घटनाक्रम को सभ्यता इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसने अपने में ऐसे सामाजिक ढांचे और सांगठनिक युक्तियों को समाविष्ट किया जो इसके विशिष्ट सांस्कृतिक स्वरूप के निर्धारण के महत्वपूर्ण कारक बने। यह अपने समय का एकमात्र साक्षर उपमहादेशीय भूखंड था। अब तक 4000 से अधिक सिंधु अभिलेख पाए गए हैं और यह सही है कि वे अभी तक पढ़े नहीं जा सके हैं, लेकिन इतना निश्चित है कि उस लिपि का उपयोग वाणिज्यिक उद्देश्यों (जैसा कि मोहरों और मुद्रांकणों से संकेतित होता है), व्यक्तिगत पहचान (जैसा कि कड़ों, कांस्य उपकरणों, इत्यादि पर किए गए उथले उत्कीर्णों से ज़ाहिर होता है) और संभवतः नागरिक उद्देश्यों (जैसा कि धौलावीरा में एक अति विशाल पट्ट के अवशेषों से प्रकट होता है) के लिए किया जाता था। इस सभ्यता की ख़ास विशेषता थी इसकी अधिवास पद्धति जिसमें नगर और कस्बा की विशेष महत्ता थी। इन नगर-केंद्रों की स्मारक-स्वरूप संरचनाएँ, जिनके निर्माण के लिए काफ़ी श्रम एवं संसाधनों की आवश्यकता हुई होगी और जहाँ विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाएँ निष्पादित की जाती होंगी इस सभ्यता के अन्य विशिष्ट अभिलक्षण हैं। पूर्व में सिर्फ मोहनजोदड़ो और हड़प्पा ही विशाल सभ्यता-संपन्न नगरों के रूप में ज्ञात थे लेकिन आज हम कई ऐसे नगरों के बारे में जानते हैं जिनके आयाम उन्हें समान हैसियत प्रदान करते हैं। जैसे चोलिस्तान में गंवेरीवाला, कच्छ में धौलावीरा और हरियाणा में राखीगढ़ी वे काफ़ी दूर में फैले हैं। और इतने बड़े पैमाने पर आबादी के समुच्चय के निर्माण के प्रतीक हैं जो पूर्व में ज्ञात नहीं थे। इन नगर-केंद्रों से प्राप्त ज़ेवरों, मूर्तियों और मोहरों की भारी मात्रा और एकरूपता से ज़ाहिर होता है कि शिल्प-उत्पाद मुख्य रूप से नगरवासियों की मांग के अनुकूल होते थे। साथ ही, योजना-निर्माण के स्वरूप, लिपिबद्ध कार्य विवरण की आवश्यकता और एक ऐसे शृंखलाबद्ध स्थलों की मौजूदगी जिसमें विभिन्न आकार और स्वरूप वाले नागर और ग्राम्य अधिवास महत्वपूर्ण बातों में सक्रिय रूप से परस्पर संबद्ध थे जो विस्तृत पैमाने पर एक ऐसे प्रशासकीय संगठन का संकेत देते हैं जो अन्य आद्य-ऐतिहासिक उपमहादेशीय संस्कृतियों की तुलना में अभूतपूर्व था। इनमें अधिकांश पुरातात्त्विक दृष्टि से एक राजकीय समाज के भी द्योतक हैं। हड़प्पा सभ्यता की कालावधि में राज्यों की संख्या अनेक थी अथवा कोई एकीकृत साम्राज्य था, यह स्पष्ट नहीं हो पाया है। नगरीय अधिवास ही नगर-राज्यों के रूप में क्रियाशील रहे हों क्योंकि उनके विन्यास और स्वरूप से स्थानीय कुलीनतंत्र, सौदागरों और शिल्पकारों की उपस्थिति के संकेत मिलते हैं।

5.2.1 मुख्य विशेषताएँ

सिंधु सभ्यता समकालीन कांस्ययुगीन संस्कृतियों- जैसे मेसोपोटामिया की सुमेरी सभ्यता और पुराने मिस्र साम्राज्य-

से अनेक बातों में मेल खाने के बावजूद अपनी विशिष्ट पहचान रखती थी। एक बात तो यह है कि दस लाख वर्ग किलोमीटर से अधिक भूभाग में फैली यह सभ्यता अपने समय की सबसे बड़ी नगरीय संस्कृति वाली सभ्यता थी। मेसोपोटामिया और मिस्र की भांति यहाँ भव्य धार्मिक पूजा-स्थल, विशाल समाधि-स्थल अथवा राजाओं के लिए शानदार महल नहीं बनाए जाते थे। इसके विपरीत, इस सभ्यता की विशिष्ट पहचान थी अपने नागरिकों के लिए ऐसे नागर सुख-सुविधाओं की प्रणाली जो उस समय के सभ्य जगत के अन्य हिस्सों में शायद ही पाई जाती थी। इन सुविधाओं में स्नानगृह समेत बड़े घर, काम के लायक सड़कों और गलियों का नेटवर्क, जल-निकास की विस्तृत व्यवस्था और एक विलक्षण जलापूर्ति प्रणाली जैसी बातें शामिल थीं। धौलावीरा में बांधों, जलाशयों, भूमिगत नालियों के नेटवर्क और मोहनजोदड़ो में हर तीसरे घर के लिए बेलनाकार कुओं से स्पष्ट होता है कि उस सभ्यता के नगर निवासी अपने समकालीन उन मेसोपोटामियाई और मिस्र-निवासियों की तुलना में कितनी अधिक सुविधाओं से लैस थे जिन्हें निकटवर्ती नदी से बाल्टी में पानी भर-भर कर लाना पड़ता था।

5.3 पृष्ठभूमि और उद्भव

सिंधु स्थलें मुख्य रूप से भारतीय उपमहादेश के उस भाग में विकसित हुए जो दिल्ली-अरावली-खंभात के भौगोलिक अक्ष के पश्चिम में है। उस कटिबंध के कई खंडों में ईसा पूर्व लगभग 7,000 वर्ष और ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी के प्रथम भाग में नगर-केंद्रों की उत्पत्ति के दौरान कृषक समुदायों का उद्भव और विकास हुआ। हड़प्पा के स्थलों पर व्यापक पैमाने पर पाए गए जीवन-निर्वाह पद्धतियाँ जिसमें गेहूँ और जौ की खेती तथा पशुपालन के व्यापक प्रचलन का संयोग था, पूर्वकाल में बलूचिस्तान के कच्छी के मैदान में अवस्थित मेहरगढ़ तक पाए गए हैं जहाँ पश्चिम एशिया में (लगभग 7,000 वर्ष ईसा पर्व) कृषि-आधारित जीवन का साक्ष्य मिला है। ईसा पूर्व पाँचवीं सहस्राब्दी से लेकर यह क्षेत्र बलूचिस्तान के वृहत भाग में उत्तर-पर्व में झौब-लोरलाई क्षेत्र से दक्षिण में लासबेला तक विस्तृत पाया जाता है।

इसके साथ ही, इस सभ्यता के विकास को सम्यक रूप से समझने के लिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि सिंधु के अनेक पुरास्थल नदी के तटवर्ती निम्न भू-खण्डों में हैं और उन क्षेत्रों में अधिवास तथा जीविका पद्धति हड़प्पा की सभ्यता के प्रस्फुटन के पूर्व लगभग एक हज़ार वर्ष की अवधि में विकसित हुए। अनेक निम्न भू-क्षेत्रों में पूर्ववर्तिता की एक लंबी अवधि रही थी। ईसा पूर्व चौथी सहस्राब्दी के प्रारंभ में चोलिस्तान का भूभाग व्यवसायों का एक सुपरिभाषित दौर का था जिसे 'हकरा मृदभांड' संस्कृति के नाम से जाना जाता है और उसे यह नाम हकरा नदी के नाम पर दिया गया जिसके इर्दगिर्द विशिष्ट मृत्तिका का जमाव पहली बार खोजा गया। यद्यपि स्थलों का सबसे बड़ा केंद्रीकरण हकरा के इर्दगिर्द है लेकिन इसका विस्तार मुल्तान में जालीपुर और हरियाणा में कुनाल तक था। इसके अधिकांश स्थल छोटे शिविर जैसे प्रतीत होते हैं जहाँ कुछ स्थापित अधिवास बड़े आकार वाले हैं (जैसे बलूचिस्तान में लोथवाला जो 26.3 हेक्टेयर में फैला है)। हकरा क्षेत्र निम्न भूखंडों की प्रथम संस्कृति वाला क्षेत्र है जहाँ अनेक प्रकार के प्रस्तर और कांस्य के उपकरणों के उपयोग से मरुस्थलीय और तटीय दोनों पर्यावरण काम में लाए जाते थे। जैसा कि जालीपुर के अल्पमूल्य प्रस्तर, मूंगा और स्वर्णमनकों के संग्रह से संकेतित होता है, वहाँ ऐसी कच्ची सामग्रियों से बने माल भी मिले हैं जो स्थानीय स्तर पर उपलब्ध नहीं थे। सिंधु के निचले भूखंडों के पश्चिमी किनारे की तरफ़ ईसा पूर्व चौथी सहस्राब्दी में एक अन्य संस्कृति का उदय हुआ जिसे अमरी संस्कृति कहते हैं और जिसने कीर्तहार गिरिपद और कोहिस्तान में प्रमुखता प्राप्त की। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अमरी के कुछ स्थलों पर एक एक्रो-सैंक्टम (acro-sanctum)/ निचला नगर विभाग के निशान पाए गए हैं। यह एक आवासीय योजना थी जो बाद में अति विकसित और परिष्कृत रूप में सिंधु-स्थलों के विन्यास में पाई जा सकती है। इस एक्रो-सैंक्टम की स्थानिक विशेषता का पता एक अति-उच्च शंकु के आकार वाली पहाड़ी से चलता है जिसके चारों ओर चबूतरे वाली पत्थर की दीवारें और ढलानों व सीढ़ियों के अवशेष मिले हैं। निचला-नगर सामान्य आवासीय क्षेत्र था जो संभवतः घरेलू संरचनाओं से भरा था।

सिंधु सभ्यता की निकटतम पृष्ठभूमि कोटदीजी संस्कृति के नाम से ज्ञात अगले चरण में निर्मित होता है जब एक सामान्य सांस्कृतिक लोकाचार के तत्त्व सिंधु-हकरा के मैदानों और सिंधु-गंगा के जल विभाजन के आर-पार देखे जा सकते हैं। वहाँ अनेक योजनाबद्ध और गढ़बंद बस्तियाँ हैं। हड़प्पा में उत्तरी-दक्षिणी और पूर्वी-पश्चिमी सड़कों की जाली के चारों ओर पंक्तिबद्ध आवासीय क्षेत्र, सिंधु में कच्ची ईंटों का 1:2:4 के अनुपात में उपयोग और कुनाल में सड़कों में सिक्तन गर्त (soakage pit) पर आधारित जल-निकासी प्रणाली विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वहाँ विभिन्न अभिकल्प (design) और स्वरूप वाले लेकिन अंशतः मानकीकृत मृदभांडों के भारी संग्रह (इनमें से कुछ तो सिंधु सभ्यता में भी पाए जाते हैं), प्रकीर्ण शिल्प और परिष्कृत धातुकर्म जिसमें मुकुट और बाजूबंद शामिल हैं, समेत चक्रिकाकार स्वर्ण मनके (जो सिंधु सभ्यता की खास विशेषताएँ हैं), कच्ची सामग्रियों के यातायात और विनिमय, विभिन्न अभिकल्प वाले वर्गाकार छापे की मोहरें पाद्री तथा धौलावीरा (दोनों गुजरात में) से सिंधु लेखन के कम-से-कम दो चिह्नों की प्राप्ति, पक्की मिट्टी से बने अनेक नारियों की ऐसी लघु-मूर्तियाँ भी मिली हैं जिनसे वहाँ के निवासियों का अनुष्ठानिक विश्वास भी ज़ाहिर होता है। यदि संपूर्णता में देखें तो इस दौर के लिए आरंभिक हड़प्पा पद का प्रयोग उपयुक्त लगता है क्योंकि उसमें परिपक्व हड़प्पा काल (पुरातन नागर सभ्यता के स्वरूप के लिए नामित) की अनेक विशेषताएँ पहले से ही मौजूद मिलती हैं। इनमें से कई विशेषताएँ वाणिज्यिक और अन्य उत्कृष्ट सामाजिक समूहों की उपस्थिति दर्शाती हैं। जब हम आवश्यक कच्ची सामग्रियाँ की प्राप्ति के व्यापक नेटवर्क पर आधारित शिल्प-विशेषज्ञता की गहनता, अथवा सिंधु के बाढ़ वाले मैदान में फ़सलों को नुक़सान पहुंचाए बग़ैर कृषि के लिए सिंचाई की आवश्यकता जिसके लिए किसी हद तक योजना-निर्माण और प्रबंधन आवश्यक थे, पर विचार करते हैं तो नियंत्रण अथवा शासन करने वाले विशिष्ट वर्ग का उद्भव और स्वरूप स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

कुल मिलाकर इसमें संदेह नहीं है कि सिंधु सभ्यता की जड़ें देशज थीं और ईसा पूर्व चौथी और तीसरी सहस्राब्दियों में विकसित उत्तर-पश्चिम की पाषाण-कांस्य युगीन संस्कृतियाँ इसकी पुरोगामी थीं। कतिपय आरंभिक इतिहासकारों के मत के विपरीत, सिंधु के नगर सभ्यता के विचार के प्रसार अथवा पश्चिम एशिया से जनसमूहों के फैलाव के कारण निर्मित नहीं हुए।

5.4 कालक्रम

ऐसी संभावना नहीं लगती कि हड़प्पा के विस्तार-क्षेत्र के सभी भागों में सभ्यता के प्रस्फुटन की प्रक्रिया साथ-साथ चली। ईसा के 2600 वर्ष पूर्व तक यह सभ्यता विद्यमान थी क्योंकि उस समय मेसोपोटामिया से इसके स्पष्ट संबंध थे। इसकी संभावना बढ़ती प्रतीत होती है कि यह पहले सिंध की निम्न भूमि चोलिस्तान और संभवतः कच्छ क्षेत्र जो एक नदी द्वारा चोलिस्तान के क्षेत्र से जुड़ा हुआ था, में परिपक्व हुई। हड़प्पा, कालीबंगन और बनावली के नगर कुछ बाद में अस्तित्व में आए। इनका अंत भी भिन्न-भिन्न समय में हुआ। मोहनजोदड़ो नगर का पतन ईसा के 2200 वर्ष पूर्व में आरंभ हुआ और 2100 वर्ष पूर्व तक यह नगर नष्ट हो गया। फिर भी, सभ्यता दूसरे क्षेत्रों में ईसा के लगभग 2000 वर्ष पूर्व के बाद और कुछ स्थलों पर ईसा के 1800 वर्ष पूर्व तक क़ायम रही।

5.5 भौगोलिक वितरण

सिंधु के अधिवास स्थल (जिनकी संख्या 500 से 600 के बीच थी) उत्तर-पश्चिम भारत और पाकिस्तान की विस्तृत पट्टी पर फैले थे। उनका वितरण दर्शाता है कि इन विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों का उपयोग विभिन्न रूपों में होता था। लरकाना की निम्न सिंधुघाटी में भारी बारिश वाला मैदान जो कृषि की दृष्टि से सिंध का संपन्नतम भाग था, पर मोहनजोदड़ो का वर्चस्व था। लरकाना मंछार जैसे झील के गर्त के लिए भी विख्यात था जहाँ मछली मारने वालों की बस्तियाँ थी। पश्चिम की ओर कीर्तहार पर्वत श्रेणी और कोहिस्तान के गिरिपीठों में ढेर-सारे स्थल थे। वहाँ कृषि झरनों के

जल और वर्षा पर ही निर्भर रही होगी। बलूचिस्तान के जुड़ने वाले मार्ग इसी क्षेत्र से गुजरते थे। ऊपरी सिंध में सुक्कुर-रोढ़ी पहाड़ियों पर चकमक पत्थर, जिनसे हड़प्पा की घाटें बनती थीं, की खदानों के इर्दगिर्द श्रमिकों की बस्तियाँ थीं। ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में सिंधु नदी की धारा थोड़ी और दक्षिण-पूर्व की ओर थी और वह कच्छ के रण के समीप अरब सागर में मिल जाती थी। सिंधु नदी ने अपनी वर्तमान धारा दसवीं और तेरहवीं सदी के बीच में ग्रहण की।

पश्चिम की ओर बढ़ने पर बलूचिस्तान मिलता है जहाँ हड़प्पा की बस्तियाँ अनेक किस्म के भूभागों - उत्तरी पर्वतीय किनारों, कच्छी के समतल मैदान, दक्षिण की ओर लासबेला ज़िले में और मकरान के नाम से ज्ञात तटीय प्रदेश के समानांतर में पाई जाती हैं। परवर्ती क्षेत्र में सिंधु सभ्यता का फ़ारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया के साथ समुद्री व्यापार के सन्दर्भ में सुत्कागेंडोर और सोत्का-कोह के सुदृढ़ स्थल महत्वपूर्ण थे। दोनों समुद्रवर्ती व्यापार के लिए उपयुक्त घाट थे और यहाँ से भीतरी भाग सुविधाजनक मार्गों से जुड़े हुए थे। बलूचिस्तान के अन्य भागों में ऐसे क्षेत्रों में सिंधु के स्थल पाए गए हैं जो कृषि के लिए अभी भी उपयुक्त हैं और मुख्य मार्गों पर अवस्थित हैं। उदाहरणस्वरूप, पठानी बांध मूला दर्रा के पास था जहाँ से एक मार्ग कीर्तहार श्रेणी के पार जाता था जबकि नौशाढ़ो बोलन दर्रा के समीप था जिससे होकर एक बड़ा मार्ग अफगानिस्तान पहुंचता था। ये मार्ग महत्वपूर्ण थे क्योंकि इनके जरिए बलूचिस्तान के धातु-उत्पादक अयस्क (तांबा और शीशा) और अल्पमूल्य रत्न (लाजवर्द और फ़िरोज़ा) संसाधन-दरिद्र सिंधु घाटी द्वारा प्राप्त किए जा सकते थे। सिंधु सभ्यता के सुदूर उत्तर का स्थल, शौर्तुघाई, उत्तर-पूर्वी अफगानिस्तान में है। शौर्तुघाई बदक्शां के लाजवर्द और संभवतः मध्य एशिया के टिन और स्वर्ण-संसाधनों तक पहुंचने का मार्ग प्रदान करता था।

सिंध के उत्तर-पूर्व में पाकिस्तान का पंजाब प्रांत है। इस प्रांत का बड़ा हिस्सा दोआबों अथवा दो नदियों के बीच के भूभागों से बना है। इनमें बारी दोआब (अथवा रावी और व्यास के एक पुराने तल के बीच की भूमि) के स्थल, विशेषकर छितराया हुआ हड़प्पा नगर उल्लेखनीय हैं। झेलम और सिंधु अथवा झेलम और चेनाब की दोआब प्रवाही धाराओं के बीच कोई अधिवास नहीं है। सतलज नदी के दक्षिण में बहावलपुर है। इसका एक हिस्सा चोलिस्तान के मरुस्थली अवशेष से बना है जिससे होकर हकरा नदी बहती थी। सिंधु के अधिवासों का सबसे बड़ा समूह (174) यहाँ पाया जाता है। भौगोलिक दृष्टि से यह भू- भाग सिंधु के मैदानों को राजस्थान से जोड़ता है जो तांबे का भारी जमाव-स्थल था। चोलिस्तान में भट्ठों के चिह्न समेत अनेक विशिष्ट औद्योगिक स्थल (79) थे। ये बड़े पैमाने पर शिल्प उत्पादन करते थे जिनमें तांबे को पिघलाना और गलाना भी शामिल था।

सतलज के पूरब में सिंधु-गंगा विभाजक का कछारी भूखंड सिंधु और गंगा नदी-प्रणालियों के बीच का अन्तर्वर्ती क्षेत्र है जो भारतीय राज्यों पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और राजस्थान में घग्गर नदी की धारा से बना है। सतलज और यमुना के बीच शिवालिक पर्वत श्रेणी से धारा का अपवहन और एक बड़ा तटवर्ती हिस्सा घग्गर में मिल जाता है। यह घग्गर पाकिस्तान के हकरा नदी का भारतीय नाम है। उस क्षेत्र में कालीबंगन और बनवाली जैसे कई प्रांतीय नगर-केन्द्र थे। यद्यपि राखीगढ़ी (हरियाणा के हिसार ज़िले में) सबसे बड़ा नगर था और कहा जाता है कि इसका विस्तार हड़प्पा के बराबर था। पुरातन सिंधु-स्थल यमुना-गंगा के दोआब में भी पाए जाते हैं और इसके सुदूर उत्तरी भाग सहारनपुर के आस-पास इनकी प्रधानता है।

अंततः सिंधु सभ्यता के विस्तार में कच्छ के रण और खंभात की खाड़ी के बीच लगभग 1,19,000 वर्ग किलोमीटर का चतुर्भुजाकार क्षेत्र शामिल था। कच्छ के रण का सर्वश्रेष्ठ नगर था धौलावीरा जहाँ ज्वारीय पंक के समतल मैदानों और मृत खाड़ियों का भारी विस्तार था। इसके आगे काठियावाड़, जिसे अब सौराष्ट्र कहा जाता है, का विशाल अंबार दक्कन के लावा (ज्वालामुखी से निर्गत तरल पदार्थ) से बना है। इसी के पूर्वी किनारे पर पत्तन वाला कस्बा लोथल विकसित हुआ। गुजरात की मुख्य भूमि कछारी है जो साबरमती, माही और छोटी समानांतर सरिताओं से बनी है और

खंभात की खाड़ी की ओर बढ़ जाती है। यहाँ किम नदी के मुहाने पर भगतराव सिंधु सभ्यता का सबसे दक्षिणी विस्तार है।

प्रगति जाँच अभ्यास 1

क. रिक्त स्थान भरें:

(i) हड़प्पा सभ्यता को ..... सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है।

(ii) हड़प्पा सभ्यता ..... युग की सभ्यता है।

(iii) हड़प्पा सभ्यता की खास विशेषता थी इसकी ..... जिसमें नगर और कस्बा की विशेष महत्ता थी।

(iv) सिंधु सभ्यता का फ़ारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया के साथ समुद्री व्यापार के सन्दर्भ में ..... स्थित सुत्कागेंडोर और सोत्का-कोह के सुदृढ़ स्थल महत्वपूर्ण थे।

(v) घग्गर ..... नदी का भारतीय नाम है।

(vi) बलूचिस्तान के कच्छी के मैदान अवस्थित ..... में आरंभिक कृषि-जीवन के प्रमाण मिले हैं।

ख. निम्नलिखित क्षेत्रों के दो-दो स्थलों के नाम बताएँ जहाँ से हड़प्पा सभ्यता के अधिवास प्रमाण मिले हैं-

(i) सिंध (ii) बलूचिस्तान (iii) गुजरात (iv) हरियाणा

5.6 अधिवासीय पद्धति

नगरीय और ग्राम्य स्थलों के साथ यहाँ का अधिवासीय पद्धति बहुपंक्तिबद्ध था और आकार और कार्य में ये स्थल अलग-अलग ढंग के थे। यहाँ मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, धौलावीरा और राखीगढ़ी जैसे अतिविशाल विस्तार वाले नगर थे जो अपने आकार (प्रत्येक 100 हेक्टेयर से अधिक) और अपने उत्खनित अवशेषों के स्वरूप के कारण विलक्षण जान पड़ते हैं। हालांकि पूर्व की यह मान्यता कि ये नगर झंझरी (gridiron) प्रणाली वाली योजना पर आधारित थे, हाल के शोधों से अमान्य सिद्ध हो चुकी है। लेकिन इनके केंद्रीकृत आयोजन का प्रभावशाली साक्ष्य मिलता है। नगर सार्वजनिक और आवासीय क्षेत्रों में बंटे थे। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में सार्वजनिक क्षेत्र का नगर के आवासीय क्षेत्र से विलगता ने दो पृथक टीलों का रूप ले लिया। धौलावीरा की नगर योजना अधिक जटिल थी। अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में यह तीन हिस्सों- किला (जो महल और अहाता क्षेत्रों में विभक्त थे) निष्क्रिय कस्बा और निचला नगर- में बंटा था और सभी एक दूसरे से जुड़े हुए तथा किलेबंदी की विस्तृत प्रणाली के अंतर्गत थे।

कुछ संरचनाओं का स्वरूप भी विचारणीय है। उदाहरणस्वरूप, मोहनजोदड़ो का किला विराट कृत्रिम चबूतरे (400 x 100 मीटर) पर बनाया गया था। यह चबूतरा कच्ची ईंट वाली दीवार (6 मीटर से अधिक मोटी) से निर्मित था और इसका घेरा बालू और गाद का था। दो बार विस्तार देने के बाद इसकी अंतिम ऊंचाई 7 मीटर हो गयी ओर यह एक ऐसा आधार बन गया जिस पर विशाल स्नानागार और अन्न भंडार जैसी अन्य महत्वपूर्ण संरचनाएँ ऊपर उठायी गईं जिससे सर्वोच्च भवन पास-पड़ोस के मैदानों से 20 मीटर ऊपर हो गया और क्षितिज पर मीलों दूर से देखा जा सकता था। स्थापत्य कला के चमत्कार का एक अन्य नमूना है धौलावीरा की जल-प्रबंधन प्रणाली जो बार-बार पड़ने वाले सूखा के क्षेत्र के लिए बेहद जरूरी थी। दो मौसमी नदियों - मनहार और मनसार- के जलग्रहण क्षेत्र में वर्षा के पानी को बांध बनाकर नगर की दीवारों के भीतर बड़े जलाशयों की ओर मोड़ दिया जाता था। प्रत्यक्षतः वहाँ नगरीय दीवारों के भीतर 16 जलाशय थे जो दीवार के भीतर के 36 प्रतिशत भाग में फैले थे। ईंटों की राजगीरी वाली दीवारें उन्हें सुरक्षा प्रदान करती थीं, यद्यपि जलाशयों का निर्माण तलशिला को काटकर भी किया जाता था। बाद के उपयोग के लिए दुर्ग के अहाते में जल का संचय किया जाता था।

नगरीय क्रम-परंपरा की मध्यवर्ती पंक्ति ऐसे स्थलों से बनी है जिनकी कई विशेषताएँ सभ्यता के अति विशाल नगरों की याद दिलाती हैं, लेकिन आकार की दृष्टि से वे अपेक्षाकृत छोटे हैं। कालीबंगन, लोथल, कोटदीजी, बनावली और अमरी उन्हीं में से हैं और उन्हें प्रांतीय केंद्र माना जा सकता है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की भांति कालीबंगन दो सुदृढ़ीकृत टीलों से बना था जिसमें अपेक्षाकृत छोटा पश्चिमी टीला में अनेक कच्ची ईंटों के चबूतरे थे जिनमें से एक पर अग्नि-वेदियाँ थी। पूर्वी टीले के अधिकांश घरों में उसी प्रकार की अग्नि-वेदियाँ थीं। लोथल भी एक किलाबंद नगर था जिसके संपूर्ण पूरबी अंचल पर एक गोदी-बाड़ा (आकार में 219x13 मीटर) फैला था जो एक प्रवेशिका जलमार्ग द्वारा नदी से जुड़ा हुआ था। इसके पड़ोस में गढ़ी (acropolis, एक दुर्ग अथवा क्षेत्र जो आक्रमण रोकने के लिए बना होता है और जो विशेषरूप से किसी पहाड़ी के शिखर पर होता है) अवस्थित था जहाँ एक भंडारघर के अवशेष मिले हैं जिसमें रस्सी तथा अन्य सामग्रियों की छापों के साथ चिकनी मिट्टी के मुद्रांकण पाए गए हैं। लोथल की नगरीय संरचना भी संकेत देती है कि नगर के आकार और इसके समग्र आयोजन में कोई आवश्यक संबंध नहीं है। मोहनजोदड़ो आकार में लोथल से पच्चीस गुना बड़ा था लेकिन लोथल में भी दो पृथक क्षेत्र, पकी हुई ईंटों के घर और नियमित रूप से पंक्तिबद्ध सड़कें और नालियाँ मिली हैं। दरअसल, इसकी छोटी सड़कें और गलियाँ सिंधु के संदर्भ में बेमिसाल हैं। सिंधु अधिवासीय क्रम-परंपरा की तीसरी पंक्ति लघु-नगरीय स्थलों से बनी है। इसे योजनाबद्धता का उदाहरण मान सकते हैं, लेकिन इसमें आंतरिक उप-विभाजनों का अभाव है। अपने आकार और संरचना की दृष्टि से अनाकर्षक स्वरूप के बावजूद उनके कार्य नगर जैसे ही थे। सिंध में अल्लाहदीनो एक ऐसा ही स्थल है। इसका व्यास मात्र 100 गज था, लेकिन यह एक महत्वपूर्ण धातु शिल्प केंद्र था। इसी प्रकार, गुजरात में कुंटासी एक छोटा हड़प्पाकालीन अधिवास है जहाँ कम मूल्य के पत्थर और तांबा प्रसंस्कृत किए जाते थे।

अंततः, नगर-केंद्र स्थानबद्ध गांवों और अस्थायी अर्द्ध-यायावरीय अधिवासों के ग्रामीण पृष्ठ प्रदेशों के साथ सक्रिय रूप से जुड़े थे और इन्हीं के द्वारा उनका भरण-पोषण होता था। ये पृष्ठ प्रदेश प्रायः विरल व्यावसायिक जमाव वाले क्षेत्र हैं। लेकिन जहाँ तक गांवों का प्रश्न है, उनमें कुटीरों की रूपरेखाएँ और अपेक्षाकृत घने निक्षेप पाए गए हैं। उदाहरणस्वरूप गुजरात में 300 वर्गमीटर का कानेवाल और इसके सांस्कृतिक निक्षेप (1.5 मीटर गहरे) एक सुरक्षित ग्रामीण अधिवास के द्योतक हैं। इसी प्रकार, हड़प्पाकालीन यमुना-गंगा के दोआब के पुरातात्त्विक निक्षेप-आलमगीर में 1.8 मीटर और हुलास में 1.4 मीटर- संकेत देते हैं कि उस क्षेत्र के अगुआ उपनिवेशवादी लंबे समय तक वहाँ रहे। इस संबंध में एक स्मरणीय तथ्य यह है कि आकार के आधार पर सिंधु सभ्यता को ग्राम्य और नागर स्थलों में बांटना उचित नहीं है। चोलिस्तान में कुछ बड़े स्थल हैं, जिसमें एक 25 हेक्टेयर में है (और इस प्रकार कालीबंगन से बड़ा है) उसके बारे में कहा जाता है कि वहाँ नगरीय नहीं, यायावरीय अधिवास थे। इसके विपरीत, कुंटासी आकार में मात्रा दो हेक्टेयर था, लेकिन शिल्पगत वस्तुओं के प्रदाता की अपनी क्रियात्मक भूमिका के कारण इसे ठीक ही नगरीय अधिवास के वर्ग में रखा गया है।

5.7 जीवन-निर्वाह पद्धति

पशुपालन, आखेट और वनस्पति-संचयन से संपूरित एक स्थायी कृषि-व्यवस्था नगरों का आर्थिक भरण-पोषण करती थी। इस सभ्यता के वितरण-क्षेत्र की एक दूसरे से काफ़ी भिन्न पारिस्थितिकी दशाओं की दृष्टि से कोई एकल अथवा समरूप योजना-नीति नहीं रही होगी। हड़प्पा निवासी हल से परिचित थे। चोलिस्तान में सिंधु स्थलों और बनावली में पक्की मिट्टी से बने हल पाए गए हैं और कालीबंगन की खुदाई से हल द्वारा जोते गए खेत का पता चला है। हालांकि यह आरंभिक हड़प्पा काल की बात है, लेकिन इसमें संदेह का कोई कारण नहीं है कि यह परिपक्व हड़प्पा काल में जारी रहा। कालीबंगन की कृषि भूमि में एक दूसरे को समकोण पर काटती हुई हल के रेखाओं के दो हिस्से (sets) मिले हैं जिससे एक ग्रिड का प्रतिमान बनता है और यह संभव है कि एक ही खेत में दो फ़सलें उगाई जाती हों। उस क्षेत्र के

आधुनिक खेतों में हल से निर्मित रेखाओं के एक भाग में सरसों और दूसरे भाग में कुलथी उपजाई जाती है। अन्य साक्ष्यों से भी मिश्रित फ़सल का संकेत मिलता है, जैसे कि सिंधु स्थलों में गेहूँ और जौ का मिश्रण। ऐसी मिश्रित फ़सलें मौसमी ख़तरों के विरुद्ध बीमा के रूप में आज भी उत्तर भारत के कई भागों में उपजाई जाती हैं ताकि यदि गेहूँ नहीं पक सके तो जौ की फ़सल अवश्य हो।

पूर्व में उन क्षेत्रों में उपजाई जाने वाली फ़सलों का मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजन स्वीकार किया जाता था- एक तो सिंधु घाटी में उसके आसपास और दूसरा गुजरात में। सिंधु क्षेत्र में सिर्फ गेहूँ और जौ ही अनाज के घटक माने जाते थे जबकि गुजरात में चावल और ज्वार-बाजरा अधिक महत्वपूर्ण थे। लेकिन अब हड़प्पा में चावल और मडुआ दोनों खोजे गए हैं। अन्य कई क़िस्मों की उपजाई जाने वाली फ़सलों का भी पता चला है जिनमें मटर, मसूर, छोटा मटर, तिल, सन, शिंब, रुई शामिल हैं। इस श्रेणी में शामिल रुई विशेष रूप से ध्यातव्य है। सिंध में रुई सामान्यतः ग्रीष्मकालीन फ़सल है और ऐसी फ़सलें सिंचाई की मदद से ही उपजाई जाती हैं। कारण यह है कि वर्षा बहुत कम, लगभग 8 इंच होती है। भारतीय उपमहादेश के किसी हिस्से में जहाँ वर्षा 10 अथवा 12 इंच से कम होती है वहाँ यदि बिना अधिक ख़तरा मोल लिए किसी पैमाने पर खेती की जाती है तो वह सिर्फ सिंचाई की सुविधा से ही संभव है।

सिंधु सभ्यता के लोगों का प्रिय आहार था - मवेशियों का मांस और उनकी अस्थियाँ जो सभी स्थलों से भारी मात्रा में पाई गयी हैं। मांस प्रदान करने के अतिरिक्त मवेशी और भैंसों ने कृषि कार्यों में सहायता दी होगी और वे भारवाहक के रूप में काम में लाए जाते होंगे। अन्य बातों के अलावा यह उनकी हत्या की उम्र से भी संकेतित होता है। गुजरात के शिकारपुर में मवेशियों और भैंसों की एक भारी संख्या लगभग तीन वर्ष तक अवश्य ज़िंदा रहती थीं लेकिन उसके बाद तीन वर्ष से आठ वर्ष की उम्र के बीच की किसी अवस्था में उन्हें मार डाला जाता था। मटन (भेड़-बकरे का मांस) भी बहुत लोकप्रिय था और भेड़-बकरों की अस्थियाँ लगभग सारे सिंधु स्थलों पर पाई गयी हैं। पशुओं का आखेट भी कोई नगण्य कार्य नहीं था, जंगली पशुओं की अस्थियाँ और पालतू मवेशियों की अस्थियाँ का अनुपात 1:4 है। पशुओं में जंगली भैंस, हिरणों की विभिन्न प्रजातियाँ, जंगली सूअर, गर्दभ, सियार, चूहा और खरगोश शामिल थे। मछली और समुद्री मोलस्क (molluscs) की अस्थियाँ भी प्रायः पाई गयी हैं। जहाँ तक आहार-संचयन का प्रश्न है, यमुना-गंगा दोआब में निश्चय ही जंगली चावल का उपभोग किया जाता था, हालांकि सबसे आश्चर्यजनक साक्ष्य गुजरात में सुरकोटदा से प्राप्त हुआ है जहाँ पहचान की गयी बीजों में सबसे बड़ी मात्रा जंगली काष्ठफल (बादाम, सुपारी आदि कड़े आवरण के फल), घासों और खर-पतवारों की है। सामान्यतः सिंधु की आहार-अर्थव्यवस्था वृहत और केंद्रीकृत जन-समूहों के भरण-पोषण की दृष्टि से व्यापक आधार वाली तथा जोखिम को कम करने वाली व्यावहारिक रणनीति पर आश्रित थी।

5.8 शिल्पगत उत्पादन और व्यापार

5.8.1 शिल्पगत उत्पादन

सिंधु स्थलों में शिल्पगत उत्पादन की शानदार श्रेणी मिलती है। एक ओर जहाँ विशेष दस्तकारियाँ, जिनकी जड़े पूर्ववर्ती काल में थीं, तकनीकी प्रक्रियाओं की दृष्टि से अधिक जटिल हो गईं, वहीं दूसरी ओर उपयोग की जा रही कच्ची सामग्रियाँ के सम्मिश्रणों का विस्तार हुआ। सीपी के शिल्पी सामान, अल्प मूल्य के रत्न और सेलखड़ी के मनके, अलंकृत मृणपात्र और उपकरणों के साथ-साथ घटिया ओर कीमती दोनों प्रकार के धातुओं के ज़ेवरों की नगरों में व्यापक मांग थी। अब यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि सिंधु सभ्यता मुख्यतः कांस्य संस्कृति ही नहीं थी। शुद्ध तांबे का प्रचलन जोरों पर था। इसके अतिरिक्त निम्न और उच्च कोटि के कांस्य से लेकर तांबा-शीशा और तांबा-निकल के अनेक प्रकार के धातु मिश्रण काम में लाए जाते थे।

कारीगरी से बनाए गए पदार्थ विशुद्धतम रूप से सिंधु घाटी के हैं क्योंकि वे नगरीय सभ्यता के आगमन के न पहले पाए जाते हैं, न उसके अवसान के बाद। उदाहरणस्वरूप, सिंधु की मोहरें (उत्कीर्ण, आकृति में वर्गाकार अथवा आयताकार और पशुओं के चित्रण जिनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय एकशृंगी है) विरले ही हड़प्पा के अंत और उसके बाद के संदर्भ में पाए जाते हैं क्योंकि वाणिज्यिक मामले, जिनके लिए उनका उपयोग होता था, नाटकीय ढंग से सिकुड़ गए थे। यही बात सिंधु सभ्यता में जानवरों और मनुष्यों की प्रस्तर-मूर्तियों, जिनमें सबसे प्रसिद्ध मूर्ति एक पुरोहित राजा (priest king) की है, के लिए भी सत्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी राजनीतिक-धार्मिक महत्ता थी और वे मूर्तिकला की दृष्टि से उच्च कला की चीज़ें थीं। इस पत्थर की नक्काशी के विलोप को नगर-केंद्रों के परित्याग के साथ-साथ विशिष्ट वर्ग के समूहों के प्रसार और रूपांतरण के साथ जोड़ा जा सकता है। उसी प्रकार, लंबा पीपा वाला कार्नेसियन (जवाहरात में प्रयुक्त होने वाला लाल, भूरा या सफेद पत्थर) के मनके सिंधु का एक विशिष्ट विलासी उत्पाद हैं जो मुख्यतः चन्हुदड़ो में बनाए जाते थे। उनकी कारीगरी के लिए कौशल और समय दोनों अपेक्षित थे। 6 से 13 सेंटीमीटर लंबे मनके के छेदन में तीन से आठ दिन लगते थे। स्पष्ट है कि नगरों के विध्वंस के बाद भारी गैर-नगरीकृत दृश्य-विधान में इस तरह का विशेषीकृत उत्पादन नहीं टिक सकता था।

सिंधु की शिल्प-परंपराओं की एक बड़ी विशेषता यह है कि वे किसी क्षेत्र-विशेष तक सीमित नहीं हैं। सीपी के सामान गुजरात के नागवाड़ा और नागेश्वर में तथा सिंध के चन्हुदड़ो और मोहनजोदड़ो में बनाए जाते थे। इसी प्रकार, धातु की शिल्प सामग्रियाँ गुजरात के लोथल, पंजाब के बारी दोआब में हड़प्पा और सिंध के अल्लाहदीनों और मोहनजोदड़ो में बनती थीं। यद्यपि शिल्प-सामग्रियां अनेक स्थानों में बनती थीं, लेकिन निर्माण तकनीकी आश्चर्यजनकरूप से मानकीकृत थी। सीपी के कड़ों की समरूप चौड़ाई सभी स्थलों पर 5 मिलीमीटर से 7 मिलीमीटर के बीच होती थी और वे लगभग सभी स्थानों पर ऐसी आरी से चीरे जाते थे जिसकी धार की मोटाई 0.4 मिलीमीटर से 0.6 मिलीमीटर के बीच होती थी। शिल्प उत्पादन के व्यापक वितरण के संबंध में उतनी ही विलक्षण बात यह है कि अनेक मामलों में निर्माण ऐसी कच्ची सामग्रियाँ पर निर्भर था जो स्थानीय स्तर पर उपलब्ध नहीं थीं। मोहनजोदड़ो में शिल्प की वस्तुएँ टर्बिनेला पाइरम नामक समुद्री मोलस्क से निर्मित होती थीं जो सिंध और बलूचिस्तान के समुद्री तट की बगल से मिलता था और जहाँ से उसे कच्चे रूप में लाया जाता था। इसी प्रकार, हड़प्पा में भट्ठियों से लेकर धातु की मैल और अपरिष्कृत वस्तुओं तक तांबा-आधारित शिल्प के सामानों के निर्माण का प्रभावशाली साक्ष्य उपलब्ध है। यह बात अलग है कि नगर खनिज पदार्थों के मामले में अभावग्रस्त क्षेत्र में अवस्थित था।

5.8.2 व्यापार

एक अत्यंत संगठित व्यापारिक प्रणाली के कारण ही यह शिल्प उत्पादन टिका रहा और विकसित हो पाया। सिंधु के लोगों में राजस्थान से लेकर अफगानिस्तान तक से संसाधनों को जुटाने और उपयोग में लाने की क्षमता थी और निर्माण के पैमाने पर विचार करने से प्रतीत होता है कि आवश्यक कच्ची सामग्रियों को जुटाने में मदद करने वाले पूर्णकालिक व्यापारी विद्यमान थे। इन संसाधन-संपन्न क्षेत्रों में अधिकांश उदाहरण सिंधु सभ्यता के साथ संपर्क के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणस्वरूप, ताम्र-पाषाण कालीन कुल्ली के सांस्कृतिक स्थल, हड़प्पा की एकशृंगी मोहरें और मृदभांड पाए गए हैं। इसी प्रकार, राजस्थान की कच्ची सामग्रियों के उपयोग का पता गणेश्वर-जोधपुरा की ताम्रपाषाण काल के कुछ स्थलों पर हड़प्पा के मृदभांडो और दोनों संस्कृतियों के वाणाग्रों, बरछों की नोकों और कंटियों में शैलीगत समानताओं से चलता है।

कच्ची सामग्रियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के पदार्थों का भी व्यापार होता था। हड़प्पा में, जो समुद्र से सैकड़ों किलोमीटर दूर था, समुद्री कैटफिश (बिल्ली की आकृति वाली मछली) की उपस्थिति खाद्य वस्तुओं में व्यापार को

रेखांकित करती है। शिल्प की वस्तुओं का भी व्यापार होता था। नागेश्वर जैसे छोटे निर्माण-केंद्र मोहनजोदड़ो को सीपी की कलछियाँ प्रदान करते थे। मोहनजोदड़ो सिंध की रोढ़ी पहाड़ियों से चर्ट की धारें भी प्राप्त करता था। अब तो सिंधु सभ्यता के अति विशाल नगरों के बीच भी परिष्कृत सामानों के विनिमय की सहज कल्पना की जा सकती है। उदाहरणस्वरूप, मोहनजोदड़ो में निर्मित शिलामाण्ड के कड़े - जो अत्यंत सिलिकामय, हलके सूक्ष्म रंध्र वाले अंशतः निसादित (sintered) मृत्तिकाकाय हैं - वहाँ से 570 किलोमीटर उत्तर हड़प्पा में पाए गए हैं। इस विनिमय में अंतर्निहित सामाजिक प्रक्रिया का स्वरूप अज्ञात है, लेकिन ऐसी संभावना नहीं है कि यह एक आर्थिक मांग को पूरा करने का मामला था, क्योंकि हड़प्पा भी ऐसे कड़ों का उत्पादन कर रहा था। संभवतः कुछ कड़ों का मोहनजोदड़ो से हड़प्पा का एकदिशीय गमन दो नगरों में संबद्ध हैसियत अथवा सगोत्रीय समुदायों के बीच सामाजिक कार्य-विधान से जुड़ा है।

अपने विस्तार-क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम और पश्चिम की संस्कृतियों और सभ्यताओं से सिंधु सभ्यता का व्यापक संपर्क था। सिंधु घाटी की और सिंधु घाटी से जुड़ी वस्तुएँ अफगानिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उत्तरी और दक्षिणी ईरान और फारस की खाड़ी में बहरीन और ओमान प्रायद्वीप में पाई गयी हैं। इन वस्तुओं में निक्षारित कार्नेलियन और लंबे पीपा-बेलन के आकार वाले कार्मेलियन के मनके, वर्गाकार व आयाताकार सिंधु मोहरें, सिंधु लिपि वाले मृदभांड, स्थानीय मोहरों पर सिंधु के मूलभाव (motifs), हाथी दांत की वस्तुएँ और उर्ध्व-लैंगिक नमूने जैसी विविध मूर्तियाँ, जो सिंधु से बहुत मेल खाती हैं, शामिल हैं। सिंधु स्थलों में बाहर से प्राप्त वस्तुएँ और विशेषताएँ जैसे- मेसोपोटामिया और फारस की खाड़ी जैसी मोहरें बाहर से प्राप्त मोहरों और सेलखड़ी व क्लोराइट के बरतनों पर मूलभाव पाए गए हैं।

लेकिन, यह भी ध्यान में रखने लायक तथ्य है कि सिंधु सभ्यता द्वारा अपनी कच्ची सामग्रियों को प्राप्त करने में मुख्य रूप से बलूचिस्तान के पूर्वी क्षेत्र को जो महत्व दिया गया है, चाहे वह ओमान से तांबा हो अथवा फारस की खाड़ी से कार्नेसियन, वह पूरी तरह संगत नहीं है। जिस क्षेत्र में सिंधु के नगरों और बस्तियों का विकास हुआ उसकी परिधियों पर और उसके भीतरी भाग में कच्ची सामग्रियों की प्रचुरता है। सिंधु के नगरों के आगमन के पूर्व ये कच्ची सामग्रियाँ सिंधु सभ्यता के पूर्व की विभिन्न संस्कृतियों द्वारा उपयोग में लाई जा रही थीं और बाद में, सभ्यता की अवस्था के दौरान की तुलना में न्यूनीकृत पैमाने पर ही सही, वे हड़प्पा के अंतिम और उसके उत्तरकाल में भी दृश्य पटल पर बनी रहीं। यद्यपि कुछ कच्ची सामग्रिययाँ लंबी दूरी के व्यापार में शामिल रही होंगी, लेकिन ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है कि सिंधु सभ्यता इन संसाधनों के लिए किसी भी रूप में पूर्णतः अथवा बहुत हद तक पश्चिमी क्षेत्र पर निर्भर थी।

प्रगति जाँच अभ्यास 2

क. सही-गलत बताएँ:

(i) नगरीय और ग्राम्य स्थलों के साथ यहाँ का अधिवासीय पद्धति बहुपंक्तिबद्ध था और आकार और कार्य में ये स्थल अलग-अलग ढंग के थे।

(ii) सिंधु की शिल्प-परंपराओं की एक विचित्र विशेषता यह है कि वे क्षेत्र-विशेष तक ही सीमित हैं।

(iii) हड़प्पावासी हल से परिचित थे।

(iv) अपने विस्तार-क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम और पश्चिम की संस्कृतियों और सभ्यताओं से सिंधु सभ्यता का व्यापक संपर्क था।

(v) सिंधु घाटी सभ्यता कच्चे माल के लिए पूर्णतः पश्चिमी प्रदेशों पर निर्भर था।

5.9 धार्मिक विश्वास

प्राचीन इतिहास संबंधी जटिलतम समस्याओं में एक समस्या है विचार और विश्वासों के अतीत के तरीकों का निर्धारण। यह सिंधु सभ्यता के मामले में विशेष रूप से लागू होता है जहाँ इनके निष्कर्ष भौतिक अवशेषों से ही निकाले जा सकते हैं क्योंकि इसका लेखन संतोषप्रद ढंग से पढ़ा नहीं जा सका है। इस संबंध में मुख्य पुरातात्त्विक संकेत हैं- अनेक प्रकार की सुवाह्य वस्तुएँ, आकृतिमूलक चित्रण, और अधिवासों के भीतर कुछ वैसे क्षेत्र जो पवित्र उद्देश्यों के लिए अलग रखे गए प्रतीत होते हैं। सिंधु स्थलों में ऐसी संरचनाएँ नहीं हैं जिन्हें मंदिर कहा जा सके और न ऐसी प्रतिमाएँ है जिन्हें पूजा की प्रतिकृति माना जा सके। कुछ संरचनाएँ जल से स्वच्छीकरण और अनुष्ठानिक कृत्यों में संबंध दर्शाती हैं। मोहनजोदड़ो में विशाल स्नानागार के नाम से ज्ञात धरती के अंदर धंसा हुआ आयताकार कुंड इसी का एक उदाहरण है। जल का उपयोग करने वाली इस संरचना की उपासना का संबंध इसके निर्माण की विधि से स्पष्ट होता है। इस संरचना के चारों ओर तीन संकेंद्रित क्षेत्र थे और वहाँ तक अनुष्ठानिक शोभायात्रा के लिए चारों ओर सड़कें थीं (स्पष्ट है कि यह नगर की एक मात्रा स्थायी संरचना थी)। कालीबंगन में दुर्ग पर अर्पण के गड्ढों के समीप स्नान हेतु बने फर्श और कूप भी यह संबंध दर्शाते हैं। कालीबंगन और सुरकोटदा जैसे नगरों में नारी की लघु मूर्तियों का अभाव है। मोहनजोदड़ो में भी पक्की मिट्टी की लघुमूर्तियों का अभाव है। मोहनजोदड़ो में भी पक्की मिट्टी की लघु मूर्तियों और टुकड़ों में सिर्फ 475 ही नारी का चित्रण करते हैं। इसका आशय यही है कि इसका प्रचलन उतना सामान्य नहीं था जितना कि बताया गया है। इन लघु नारी मूर्तियों में अनेक चिराग के रूप में जलाने के काम में लाई जाती थीं। पुरुष-सिद्धांत की दृष्टि से प्रजनन-क्षमता सिर्फ शिव-पशुपति मोहर के संदर्भ में ही नहीं, बल्कि मोहनजोदड़ो और धौलावीरा में पाए गए लैंगिक पत्थरों के संदर्भ में भी परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त कालीबंगन से प्राप्त अंडाकार चौरस जगह में स्थित लैंगिक प्रतीक वाला टेराकोटा का लघु चित्रण भी यही दर्शाता है। धार्मिक पवित्रता पेड़ों और पशुओं से भी जुड़ी हुई थी। सिंधु की मोहरों पर अंशतः मानव व अंशतः पशु वाली छापों की उपस्थिति और पीपल के पेड़ पर एक विराजमान मानव हड़प्पा के धर्म में एक तरह से प्रकृति पूजा आधारित धर्म (shamanistic) का संकेत देते हैं। फिर भी, इनमें से कोई भी विशेषता पूजा-केंद्रों और राज्य-संचालित अनुष्ठानों वाले उस परा-क्षेत्रीय सिंधु धर्म का संकेत नहीं देती है जो कांस्यकालीन पश्चिम एशिया और मिस्र के वास्तु शिल्पीय परिदृश्य पर मोटे अक्षरों में लिखे हैं।

5.10 पतन और अंत

नगरों के ह्रास की प्रक्रिया कई रूपों में प्रकट होती है। मोहनजोदड़ो में यह प्रक्रिया निरंतर चलती रही जो इस तथ्य से ज़ाहिर होता है कि सिरे के स्तर की संरचनाओं की दीवारें पतली और घटिया ईंटों की होने लगी। यही बात धौलावीरा पर भी लागू होती है जो उत्तरोत्तर शक्तिहीन होता गया और दो पारियों में नगर का परित्याग कर दिया गया। जैसे-जैसे नगरीय संरचना विखंडित होती गयी, पूर्व के सुदृढ़ भवनों के स्थान पर सस्ती, कच्ची संरचनाएँ खड़ी होती गईं। कालीबंगन का परित्याग अधिक आकस्मिक था और बनावली के साथ भी यही बात हुई। दूसरे शब्दों में, नगर-जीवन का विलोप एक नहीं बल्कि अनेक घटनाओं के कारण हुआ। फिर भी, इन घटनाओं के संबंध में अथवा उनके सापेक्षिक महत्व पर मतों में समानता नहीं है। वास्तव में सिंधु सभ्यता का ह्रास भारी अटकलबाजी और विवाद का केन्द्र रहा है।

नगर के ह्रास का आरंभिक विचार मूलतः आर्यों और उनके द्वारा दुर्गों व नगरों पर मचाई गयी भारी तबाही के संबंध में ऋग्वेद में संकेत के इर्दगिर्द सिमटा था। यह धारणा 1940 के दशक तक बनी रही जब आर्यों के आक्रमण का पुरातात्त्विक प्रमाण एक ओर तो बिखरे अस्थि-पंजरों (प्रत्यक्षतः सामूहिक हत्याकांड के चिह्न) के ढेर की खोज और दूसरी ओर जान बूझकर प्रवेश-मार्गों के अवरोध और परिपक्व हड़प्पा सभ्यता की एक ऐसी संस्कृति जो विजेताओं का

प्रतिनिधित्व करने वाली मानी जाती है, के रूप में प्रस्तुत किया गया। लेकिन 1950 के दशक से आर्यों के आक्रमण की ऐतिहासिकता पर गंभीर शंकाएँ उठाई गयी हैं। अन्य बातों के अतिरिक्त यह प्रमाणित किया गया है कि सामूहिक नरसंहार का साक्ष्य कुछ ही अस्थि-पंजरों पर आधारित था और उनकी तिथि उसी स्तर पर निर्धारित नहीं की जा सकती।

इधर सिंधु के विस्तार-क्षेत्र में पर्यावरण के प्रश्न और नगरीय संस्कृति के ह्रास में नदियों और जलवायु की भूमिका पर अधिकाधिक ध्यान दिया गया है। मोहनजोदड़ो, चन्हुदड़ो और लोथल जैसे अनेक सिंधु स्थलों में बाद के काल के गाद के मलवे पाए गए है जिनसे उफनती नदियों की बाढ़ से हुई क्षति की संभावना बनती है। ऐसा सुझाया गया है कि नदियों का अतिरिक्त जल, भूकंप का परिणाम था, हालांकि यह जल के अतिरेक का नहीं अपितु नदियों में अपर्याप्त जल का परिणाम रहा है। यह प्रसंग यहाँ घग्गर-हकरा का है जो प्रायः वैदिक सरस्वती से अभिन्न मानी गयी है और जिसने नगरीय सभ्यता के पश्चात अनेक स्थलों को शुष्क बना दिया। घग्गर-हकरा में प्रवाह की कमी नदी के विचलन का परिणाम थी ओर विद्वानों के एक वर्ग के अनुसार यह सतलज नदी थी जिसने अपना प्रवाह-मार्ग त्याग दिया और पश्चिम की ओर बहने लगी, जबकि कुछ अन्य विद्वान मानते हैं कि यमुना नदी सिंधु को छोड़कर गंगा की प्रणाली में मिल गयी।

हड़प्पावासियों का अपने पर्यावरण पर प्रभाव भी सिंधु सभ्यता के ह्रास का एक कारक माना गया है। नगरीय मांग और भूमि की वहन-क्षमता, जिसके फलस्वरूप चारा और ईंट पकाने हेतु ईंधन की आवश्यकताएँ पैदा हुई, के बीच संभावित असंतुलन को भी इस ह्रास के कारकों में एक माना गया है। फिर भी, ऐसे तर्कों के समर्थन में पुरातात्त्विक आधार को प्रस्तुत किया जाना अभी बाकी है। चोलिस्तान के प्रायः पूरब में जो विस्तार है उसमें दीर्घ-कालीन सांस्कृतिक जड़ों का अभाव पाया गया है। यह भी कहा गया है कि चूंकि सिंधु सभ्यता घटनाक्रम किसी लंबी प्रक्रिया में विकसित न होकर शिकारी-संग्राहक आर्थिक संदर्भ में थोपा गया था, इसलिए समय बीतने के साथ इसका थोड़ा-बहुत विस्तार हुआ और अंततः यह क़ायम नहीं रह सका। जहाँ तक सिंधु-गंगा के जल विभाजक और गुजरात में सभ्यता की किसी लंबी पूर्ववर्तिता के अभाव का प्रश्न है, अब यह एक ओर कच्छ और सौराष्ट्र में और दूसरी ओर हरियाणा के हिसार क्षेत्र में परिपक्व हड़प्पा के दौर से पहले की संस्कृतियों की खोज के संदर्भ में संशोधित किए जाने की ज़रूरत है। साथ ही, नगरीय स्वरूप के पतन के बाद की अवधि में पाषाण-कांस्यकालीन ग्राम्य संस्कृतियों तथा सूक्ष्म पाषाणकालीन शिकारी-संग्राहक की खोज से ऐसा संकेत मिलता है कि उन क्षेत्रों में ऐसी संस्कृतियाँ क़ायम रहने में सक्षम थीं। फिर भी, नगरीय सभ्यता की अत्यंत जटिल प्रणाली, जो विभिन्न सामाजिक और आर्थिक उप-प्रणालियों के बीच बारीक ढंग से संतुलन बनाए रखती थी, जीवन-सक्षम नहीं रह गयी थी।

सिंधु नगर केन्द्रों के पतन के बाद हड़प्पा के अंतिम अथवा उत्तर-काल की कई संस्कृतियाँ पनपीं, जैसे - पंजाब और चोलिस्तान में कब्रिस्तान एच (Cemetery H) संस्कृति, सिंध में झुकर संस्कृति, गुजरात में रंगपुर 2बी और द्योतिमान लाल मृदभांड (lustrous red ware) के दौर। इस पिछले दौर में हड़प्पा की परंपरा के कुछ तत्त्व, जिसका आशय उन विशेषताओं से है जिनकी वंशावली परिपक्व हड़प्पा की परंपराओं में पाई जा सकती है, अन्य सांस्कृतिक तत्त्वों से प्रभावित होकर कमोबेश क़ायम रहे। फिर भी, सभ्यता तो नष्ट हो ही चुकी थी भले ही इस परंपरा के कुछ पहलू बने रहे, यह एक ऐसे भूदृश्य में था जिसकी सांस्कृतिक विविधता पूर्ववर्ती परिपक्व हड़प्पा काल से बिल्कुल बेमेल थी।

5.11 उपसंहार

प्रश्न है कि पश्चवर्ती सांस्कृतिक विकास के स्वरूप की तुलना में सिंधु सभ्यता के अंत का अर्थ क्या है? उदाहरणस्वरूप, नगरीय अधिवास पूरी तरह विलुप्त नहीं हो गए - चोलिस्तान में कुदवाला, गुजरात के समुद्रीतट से दूर बेत द्वारका और गोदावरी की ऊपरी घाटी में दीमाबाद उनमें ऐसे ही तीन स्थल हैं। लेकिन उनकी संख्या कम ही है और निश्चय ही कोई

ऐसा नगर नहीं है जो भव्यता और विशालता में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के नगरों के समकक्ष हो। अब वे यत्र-तत्र ही कुछ बचे हैं और यद्यपि हड़प्पा में कब्रिस्तान-एच (Cemetery H) अभिग्रहण में पकी हुई ईंटें और नालियां मौजूद हैं जबकि संघोल में एक मजबूत पंक का चबूतरा था जिस पर पंक-निर्मित घर बने थे। यदा-कदा लेखन भी मिलता है, लेकिन वह सामान्यतः कुछ ठीकरों (postsherds) तक ही सीमित है। मोहरों के साथ भी यही बात लागू होती है। वह दुर्लभ होती गयी और जो दीमाबाद और झुकर में गोलाकार हैं, सिंधु घाटी की भांति आयताकार नहीं। इसके विपरीत धौलावीरा के नमूने आयताकार तो हैं किंतु उन पर आकृतियाँ नहीं हैं। व्यापार के पैमाने में कमी आने का एक अन्य संकेत है - कच्ची सामग्रियों की अन्तर-क्षेत्रीय प्राप्ति का छिटफुट साक्ष्य। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सिंधु सभ्यता की नगरीय परंपरा के प्रतीकात्मक तत्त्वों का तेज़ी से ह्रास हुआ और अंततः वे विलुप्त हो गए।

फिर भी, ऐसा लगता है कि सिंधु सभ्यता से जुड़ी सारी चीज़ें बिना कोई चिह्न छोड़े विलुप्त नहीं हो गयी। नगरीय सभ्यता के पतन के बाद कुछ शिल्प-परंपराएँ क़ायम रहीं जो हड़प्पा के अंतिम अथवा उसके उत्तरकाल के पच्चीकारी (mosaic) की सजावटों में पाई जाती हैं। अलंकृत मृणपात्र एक ऐसा ही शिल्प था। और कृत्रिम रत्न से बने जेवर हड़प्पा के उत्तरकाल में पाए गए हैं। ऐसी ही निरंतरता धातु तकनीकी के स्वरूप में परिलक्षित होती है, हालांकि तांबे के उपयोग में आम तौर पर कमी आई थी। महाराष्ट्र के दीमाबाद में लुप्तमोम (lost wax) प्रक्रिया से बने कांस्य और गुजरात के रोजदी में समुद्री शेल की ताम्र प्रतिकृति इसके साक्ष्य हैं और सिंधु के ताम्र और ताम्र मिश्रित धातु की परंपराओं की तकनीकी उत्कृष्टता की निरंतरता को रेखांकित करते हैं। सिंधु सभ्यता के अंतिम अथवा उसके उत्तरकाल में कृषि और अधिवास में भारी विस्तार तो हुआ किंतु उसमें वह सांस्कृतिक संबद्धता और शिल्पगत एकरूपता नहीं थी जो उस सभ्यता की खास विशेषता थी। सभ्यता के स्थान पर अब अपनी-अपनी विशिष्ट क्षेत्रीय पहचान वाली संस्कृतियाँ शेष रह गयी थीं।

5.12 सारांश

- सिंधु सभ्यता दक्षिण एशिया की पहली नगरीय संस्कृति थी।
- भौगोलिक दृष्टि से इस सभ्यता (जिसे हड़प्पा सभ्यता भी कहते हैं और जो इसका प्रथम ज्ञात स्थल है) में सिंधु क्षेत्र से अधिक हिस्से शामिल थे।
- नगरीय और ग्राम्य स्थलों के साथ यहाँ का अधिवासीय पद्धति बहुपंक्तिबद्ध था और आकार और कार्य में ये स्थल अलग-अलग ढंग के थे।
- पशुपालन, आखेट और वनस्पति-संचयन से संपूरित एक स्थायी कृषि-व्यवस्था नगरों का आर्थिक भरण-पोषण करती थी।
- सिंधु स्थलों में शिल्पगत उत्पादों (मृदभांड, मोहरें, मनके, प्रस्तर-प्रतिमा, टेराकोटा-मूर्तियाँ इत्यादि) की शानदार श्रेणी मिलती है।
- अपने विस्तार-क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम और पश्चिम की संस्कृतियों और सभ्यताओं से सिंधु सभ्यता का व्यापक संपर्क था।
- हड़प्पा सभ्यता की अधिवास पद्धतियाँ जलमार्गों और पारंपरिक स्थल मार्गों के इर्दगिर्द पायी गयी हैं जो उनके परस्पर विनिमय में सक्रिय भागीदारी को दर्शाता है।
- हड़प्पा सभ्यता का आकस्मिक अंत नहीं हुआ।

- नगरों के ह्रास की प्रक्रिया कई रूपों में प्रकट होती है। रोचक बात है कि हड़प्पावासियों का अपने पर्यावरण पर प्रभाव भी सिंधु सभ्यता के ह्रास का एक कारक माना गया है। इस नगरीय संस्कृति के पतन में जलवायु और नदियों की भी अहम भूमिका मानी जाती है।

प्रगति जाँच अभ्यास-3

क. जोड़ा मिलाएँ:

(i)	विशाल स्नानागार	a.	मकरान पत्तन
(ii)	कब्रिस्तान एच	b.	राजस्थान
(iii)	सुत्कागेंडोर	c.	सिंध
(iv)	कालीबंगन	d.	मोहनजोदड़ो
(v)	चन्हुदड़ो	e.	हड़प्पा

ख. निम्निखित में कौन से कथन सत्य हैं ?

(i) कालीबंगन और सुरकोटदा जैसे नगरों में नारी की लघु मूर्तियों का अभाव है।

(ii) सिंधु स्थलों से प्राप्त कोई ऐसी संरचना नहीं है जिसकी व्याख्या मंदिर के तौर पर और कोई ऐसी प्रतिमा नहीं है जिसकी कल्पना पूजनीय देवी-देवताओं से की जा सके।

(iii) कालीबंगन से प्राप्त कुछ टेराकोटा-मूर्तियाँ प्रजनन संबंधी धार्मिक विश्वासों को दर्शाते हैं।

ग. संक्षिप्त टिप्पणी

(i) हड़प्पा सभ्यता का उद्भव

(ii) हड़प्पा सभ्यता का भौगोलिक वितरण

(iii) हड़प्पाकालीन व्यापार

घ. दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

(i) हड़प्पा सभ्यता के पतन के कारणों की विवेचना करें।

प्रगति जाँच अभ्यासों के उत्तर

प्रगति जाँच अभ्यास 1

क. (i) सिंधुघाटी (ii) कांस्य (iii) अधिवास पद्धति (iv) मकरान पत्तन (v) हकरा (vi) मेहरगढ़

ख. (i) मोहनजोदड़ो, कोटदीजी (ii) सुत्कागेंडोर , सोत्का-कोह (iii) रंगपुर, लोथल (iv) बनावली, राखीगढ़ी

प्रगति जाँच अभ्यास 2

क. (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) गलत

प्रगति जाँच अभ्यास 3

क. (i)-d, (ii)-e, (iii)-a, (iv)-b, (v)-c

ख. (i) और (ii)

ग. संक्षिप्त टिप्पणी: (i) देखें खंड 5.3 (ii) देखें खंड 5.5 (iii) देखें खंड 5.8.2

घ. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न: (i) देखें खंड 5.10

पाठ 6

गैर-हड़प्पाई नवपाषाण-ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ

पाठ्य-रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 गैरिक मृदभांड संस्कृति

6.3 ताम्र-भंडार संस्कृति

6.4 पश्चिमी, मध्य और पूर्वी भारत की ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ

6.4.1 अहार या बनास संस्कृति

6.4.2 कायथा संस्कृति

6.4.3 मालवा संस्कृति

6.4.4 जोरवे संस्कृति

6.4.5 पूर्वी ताम्रपाषाण संस्कृति

6.5 उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत और कश्मीर के नवपाषाण अधिवास

6.6 दक्षिण की नवपाषाण-ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति

6.7 उपसंहार

6.8 सारांश

6.0 उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन आपको निम्नलिखित विषयों में सक्षम बनाता है-

- हड़प्पाई सभ्यता के प्रसार क्षेत्र से परे कृषीय अधिवासों की पहचान
- इन अधिवासों के विकास और प्रकृति की समझ
- नवपाषाण-ताम्रपाषाण संस्कृतियों की अर्थव्यवस्था और अन्य विशेषताएँ
- विभिन्न संस्कृतियों की विविध मृदभांड-शिल्पकला की पहचान

6.1 प्रस्तावना

आम तौर पर यह माना जाता है कि हड़प्पा संस्कृति के बाद एक ऐसी ग़ैर-शहरी ताम्रपाषाण संस्कृति विकसित हुई जिसकी मुख्य विशेषता थी तांबा और पत्थर को उपयोग में लाना। इन संस्कृतियों में जो भी अन्तर थे वे मौलिक न

होकर मुख्यतः मृणपात्रों (मृदभांडों) तक सीमित थे। सीमित मात्रा में ताम्र और भारी मात्रा में पत्थर की धारों का उपयोग करने वाली इन संस्कृतियों का अभ्युदय ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के दौर में हुआ।

6.2 गैरिक मृदभांड संस्कृति (ओ. सी. पी. कल्चर)

अधिकांश गैरिक मृदभांड के स्थल गंगा के दोआब, जो कछारी मैदान है, में पाए गए हैं। इन मृणपात्रों (मृदभांडों) को बड़े संवर्गों में रखा गया है : क्षेत्र A (पश्चिमी) प्ररूप और क्षेत्र B (पूर्वी) प्ररूप। क्षेत्र A के ओसीपी, जो हड़प्पा से प्रभावित प्रतीत होते हैं, जोधपुर, सिस्वाल, मितथाल, बारा, अंबखेरी और बड़गांव से मिले हैं। ये मुख्य रूप से कटोरा, थाली, कलश, मूंठदार ढक्कन और चीड़े किनारे वाले कलश के आकार के हैं। क्षेत्र B के ओसीपी, जो लाल किला, अतरंजीखेरा और सईपाई में पाए गए हैं, में मनकेदार किनारे वाली चिलमिची का अभाव है।

ऊपरी गंगा-घाटी के कई स्थानों (नसीरपुर, झिंझाना, बहादरबाद इत्यादि) में तांबे का ज़खीरा के साथ-साथ इन सभी स्थलों में ओसीपी भी पाए गए हैं जिससे दोनों के बीच साहचर्य का संकेत मिलता है। लेकिन डी.पी. अग्रवाल के अनुसार इस साहचर्य के और पुष्टीकरण की आवश्यकता है और फ़िलहाल उन्हें कामचलाऊ ही माना जा सकता है।

6.3 ताम्र-भंडार संस्कृति

छोटानागपुर का पठार से लेकर गंगाघाटी के विस्तृत क्षेत्र में तांबे के अनेक भंडार पाए गए हैं जिनमें अंगूठियाँ और ऊंचेस्कंध वाले सेल्ट, मछली मारने की बर्धियां, कुठारें, मानवी आकृतियाँ, दुधारी कुठारें, कोटर वाले कुठार इत्यादि शामिल हैं। इनमें अधिकांश खोजे आकस्मिक प्राप्तियाँ हैं और अन्य शिल्पगत सामग्रियों की सूचना नहीं मिली है। भागरापीर, बहादरबाद, सर्थवली, फ़तेहगढ़, निओरी, नसीरपुर, बिसौली और मिदनापुर कुछ महत्वपूर्ण स्थल हैं जहाँ तांबे की वस्तुएँ बहुतायत से मिली हैं। इस ताम्र भंडार संस्कृति की कोई C-14 (कार्बन-14) तिथि उपलब्ध नहीं है।

प्रगति जाँच अभ्यास 1

क. निम्नलिखित में से कौन से कथन असत्य हैं?

(i) ताम्रपाषाण संस्कृति की मुख्य विशेषता थी तांबा और पत्थर का उपयोग।

(ii) इन संस्कृतियों का प्रथम अभ्युदय ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के दौर में हुआ।

(iii) अधिकांश गैरिक मृदभांड के स्थल छोटानागपुर के पठार में पाए गए हैं।

(iv) ताम्र भंडार संस्कृति की कोई C-14 (कार्बन-14) तिथि उपलब्ध नहीं है।

ख. निम्नलिखित संस्कृतियों के दो-दो प्रतिनिधि स्थलों के नाम बताएँ:

(i) गैरिक मृदभांड संस्कृति

(ii) ताम्र-भंडार संस्कृति

6.4 पश्चिमी, मध्य और पूर्वी भारत की ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ

ताम्रपाषाण संस्कृतियों की पहचान भौगोलिक स्थितियों के आधार पर हुई है। हम इनमें से कुछ संस्कृतियों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे जो वस्तुतः ग्राम-अधिवास हैं और अपने स्थल के नाम से जाने जाते हैं। इन संस्कृतियों की कुछ समान विशेषताएँ हैं- जैसे मृदभांड जो अधिकतर काले-लाल हैं और अत्यधिक वशिष्ठ फलक उद्योग।

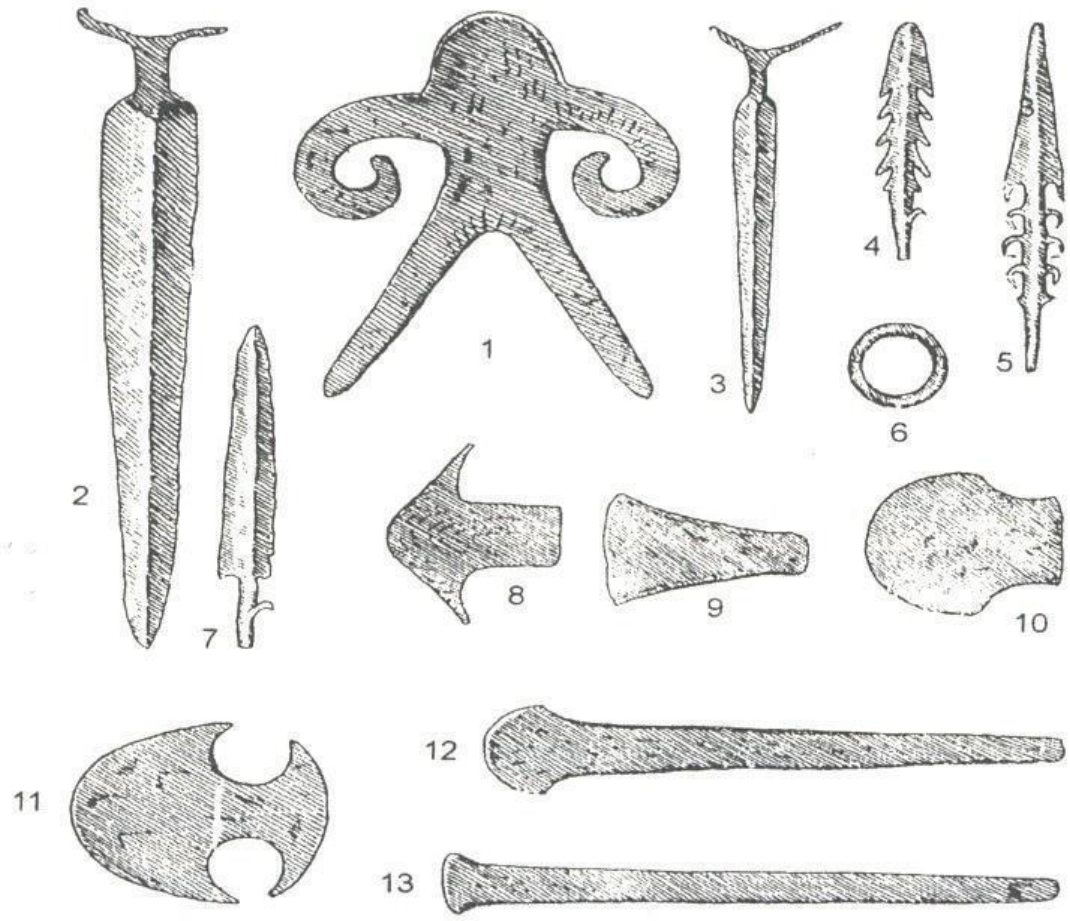

ताम्र-भंडारों से प्राप्त वस्तुएं –

1. मानवाकृति (anthropomorphic figure); 2 और 3. दुसिंगी तलवार (antenna sword); 4 और 5. भाले (harpoon); 6. छल्ला (ring); 7. काँटेदार बरछी (hooked spearhead); 8. परशु (hatchet); 9. कुठार (celt); 10. स्कन्धीय कुठार (shouldered celt); 11. दुधारी कुल्हाड़ी (double edged axe); 11 और 12. छड़नुमा कुठार (bar celt);

(स्रोत: वी.के. जैन, *भारत का प्रागैतिहास और आद्य-इतिहास,* 2008)

6.4.1 अहार और बनास संस्कृति

अहार और गिलुंड मुख्य स्थल हैं जहाँ सम्यक रूप में खुदाइयाँ हुई हैं, यद्यपि इस संस्कृति के पचास से अधिक स्थल बनास नदी की घाटी और दक्षिण-पूर्व राजस्थान में ज्ञात हुए हैं।

अहार और गिलुंड खासी बड़ी बस्तियाँ हैं। अहार का टीला 500×270×13 मीटर का है और इसमें भवन-निर्माण की अनेक अवस्थाएँ हैं। खुदाइयों से पता चला है कि अहार में भवनों की कुरसी (Plinth) स्तरित चट्टान की पट्टियों से बनती थी। दीवारें सूखे पंक अथवा कच्ची ईंटों की होती थीं। कहीं-कहीं मुख्य आधार स्तंभों और संभवतः लंबे सपाट शहतीरों के लिए, जो छाजन को सहारा देते थे, लकड़ी काम में लाई जाती थी। छाजन ढालुआं होती थी और बांसों से छाई जाती थी और फिर उन्हें खपरों के बदले तिनकों और पत्तों से ढंक दिया जाता था। घर बड़े और छोटे दोनों प्रकार के होते थे। घरों के खंभे पकाई गयी मिट्टी अथवा नदी के कंकड़ों से मिली हुई मिट्टी से बनती थीं। बड़े घरों में विभाजक दीवारें होती थीं और रसोई घर में चूल्हे अवश्य होते थे। कुछ चूल्हों के विशाल आकार से ज़ाहिर होता है कि कुछ घरों में बड़े परिवार थे और उतने ही बड़े बरतनों में एक ही साथ दो या तीन प्रकार के व्यंजन पकते थे। मिट्टी के बने तवा मिलने से लगता है कि पीसने और रोटी पकाने का प्रचलन था।

अवधि II के मृदभांडों के सांचे से ज्वारी अनाज का पता चलता है। लंबे दानों वाले चावल के चिह्न भी मिले हैं। झुलसे हुए या किसी अन्य रूप में कोई और अनाज नहीं मिला है। लेकिन पशुओं की हड्डियाँ भारी मात्रा में प्राप्त हुई हैं : समुद्री कछुआ, मछली, बकरी, भेड़, सूअर और मवेशी खाए जाते थे। पशुओं के अवशेष में गायों की प्रधानता है। बनास संस्कृति से जुड़े सात मुख्य बरतनों (मृदभांडो) में काले-और-लाल मर्तबान (मृदभांड) जो बाहर से उजले रंग में रंगे होते थे, प्रधान मृदभांड थे। उनकी सामान्य आकृतियाँ कटोरों और थालियों की हैं और मृदभांड पहिये पर बने हुए हैं। लालपट्टी वाले बरतनों में कटोरे, लोटे और धारी वाले बरतन प्रमुख हैं। ये मृणपात्र भी चक्र-निर्मित हैं और इनके रंग भूरा और नारंगी से लेकर कत्थई तक हैं।

मृण्मूर्तिकला (टेराकोटा) काफी विकसित थी। अहार संस्कृति की एक अन्य विशेषता यह है कि अहार में तो पत्थर के कुठारों और फलकों का पूर्ण अभाव है, गिलुंड और कायथा में हम विकसित फलक उद्योग पाते हैं। अहार में सिर्फ तांबे का उपयोग होता था और वहाँ तांबे के दो कुठार, एक चाकू का फलक, एक चद्दर, एक कड़ा और दो अंगूठियाँ मिली हैं।

उपलब्ध कार्बन-14 की तिथियों के अनुसार बनास संस्कृति लगभग 2000-1400 वर्ष ईसा पूर्व के बीच में रही होगी।

6.4.2 कायथा संस्कृति

मध्य भारत में पाषाण-कांस्य युगीन संस्कृतियों में कायथा संस्कृति सबसे पूर्व की है। जैसा कि कार्बन-14 की तिथियों से पता चलता है, इसकी अवधि ईसा के लगभग 2000 से 1800 वर्ष पूर्व के बीच थी। कायथा एक मात्रा स्थल है जिसकी खुदाई सही ढंग से हुई है, हालांकि चालीस अन्य स्थल ज्ञात हुए हैं जो इस संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कायथा संस्कृति मुख्यतः तीन अवधियों में बांटी गयी है। अवधि I की विशेषताएँ हैं- मृदभांड के तीन सुस्पष्ट प्ररूप, तांबे के अनेक कुठार और लघुपाषाण से बने फलक और नोंक तथा स्फटिक, गोमेद, कार्मेसियन और सेलखड़ी के मनके।

अवधि II की विशेषता है- अहार के प्ररूप वाले काले-और-लाल मृदभांड और अवधि III की विशेषता न सिर्फ कायथा, बल्कि नवादाटोली, नागदा, एरण, त्रिपुरी, बेसनगर और अव्रा में भी मिलती है। बेहतर रूप में यह दौर मालवा पाषाण-कांस्य संस्कृति के नाम से जाना जाता है।

कायथा संस्कृति की मुख्य विशेषता है- उसके तीन किस्म के मृत्तिका उद्योग जिनमें बैंगनी अथवा गाढ़े लाल रंग में रंजित मोटा, मजबूत, भूरा लेप वाला भृदभांड सबसे प्रमुख है। इसके अभिकल्प प्रायः रेखाकार हैं और किनारे रंगे हुए

हैं। कटोरा, चिलमिची और नतोदर गर्दन वाले गोलाकार मर्तबान जैसे मृदभांडों की प्रधानता है। कुछ भंडारण वाले मृदभांड भी पाए गए हैं।

इस संस्कृति की एक अन्य महत्वपूर्ण मृत्तिका है पांडुचित्रित लाल मृदभांड। इसकी दीवारें पतली और बहुत बारीक बनावट की हैं। पांडुरंग (नारंगी रंग) के लेप के कारण इसके पात्रों की सतह रंग पांडु है और उन पर ज्यामितिक - कुंडलित मालाएँ, जालीदार हीरक और तिरछी रेखाएँ - अभिकल्प बने हैं। लाल रंजक में नतोदर गर्दन वाले मर्तबान, चिलमिची और लोटा इसकी मुख्य आकृतियाँ हैं जिनमें लोटा विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसका शरीर औंधा हुआ, पेंद गोल और किनारा फैला हुआ है। एम.के. धावलिकर मालवा के मृणपात्रों की उत्पत्ति कायथा के पांडु चित्रित लाल मृदभांड से मानते हैं क्योंकि दोनों संस्कृतियों में आकृति और बनावट दोनों एक जैसी हैं।

तीसरा मुख्य बरतन है कंघी किया हुआ मर्तबान। यह परिष्कृत बनावट का मृदभांड है जिसमें किसी प्रकार का कालापन नहीं है। यह अंग्रेज़ी के 'वी' अक्षर (V) के आकार वाले फ़ीतों और टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं इत्यादि, जैसे छेदित प्रतिमानों से अलंकृत है। ये छेदित अलंकरण किसी कंघी जैसे उपकरण से किए गए प्रतीत होते हैं।

कोई संपूर्ण गृह-योजना उपलब्ध नहीं है। खंभों के छेद से लगता है कि शायद चीरे हुए बांस के परदों से बने गोलाकार और आयताकार कुटीरों का उपयोग होता था। किसी दफ़न स्थल की सूचना नहीं मिली है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कायथा के लोग ताम्र प्रौद्योगिकी में दक्षता हासिल कर चुके थे जैसा कि दो ताम्र कुठारों की खोज से स्पष्ट होता है। इनका काटने वाला किनारा तीक्ष्ण है और छेदन मसूढ़ाकार; दूसरा किनारा ठोक-पीट कर मूठ के लिए सुविधाजनक बनाया गया है कुठार बाद के पाषाण-कांस्य युग के नमूनों, जो मध्य भारत और दक्कन में सिर्फ ठोके-पीटे जाते थे, की भांति नहीं है। एक छेनी के भी यहाँ से मिलने की सूचना है।

ताम्र उपकरणों से जुड़ा हुआ एक विशेषीकृत फलक के शल्क वाला उद्योग था जिसमें समानांतर पार्श्व वाले फलक, कलम बनाने वाले चाकू के फलक, बेधनी, कुंद किए गए काले चाप इत्यादि बनाए जाते थे। इस्तेमाल किया जाने वाला पत्थर मुख्य रूप से बिल्लौर था जो समीप के शिलास्तूपों में उपलब्ध था।

अन्य सामान्य पदार्थ थे- मनके, कड़े और पायल। बरतन, छुरे, बरछे और तलवारें विरल हैं। एक पात्र में दो गले के हार, कार्नेलियन और गोमेद के द्विशंकु और चपटे किनारों वाले मनके पाए गए हैं। प्रत्येक कंठाहार 160-170 मनकों के होते थे। एक पात्र से सेलखड़ी के 40,000 सूक्ष्म मनके वाला कंठाहार पाया गया है।

मोहेनजोदड़ो में इसी प्रकार के पात्रों से तांबे के कड़े और अल्पमूल्य के मनके वाले कंठाहार पाए गए हैं। हड़प्पा के साथ सजातीयता के दावे का यह एक और प्रमाण है। फिर भी, सोठी अथवा प्राक-हड़प्पा संस्कृति से सदृश्य का आधार अधिक पुष्ट होता है। सोठी और कायथा के लाल लेप वाले बरतन और कंघीनुमा बरतन में विशेष सजातीयता परिलक्षित होती है। इसीलिए संकालिया का अनुमान है कि जब हड़प्पावासियों ने प्राक-हड़प्पावासियों को राजस्थान से बाहर कर दिया तो मालवा को अपना उपनिवेश बना लिया। पूर्व की ओर इस प्रसार से 'कलिसिंध' पद और उन मृणपात्रों की उपस्थिति की व्याख्या की जा सकती है जिसका प्राक-हड़प्पा और आमरी, कोटदीजी और कालीबंगा के सिंधु (मृदभांडों) से थोड़ा-बहुत सादृश्य है।

6.4.3 मालवा संस्कृति

मालवा संस्कृति कायथा और बनास संस्कृतियों के बाद विकसित हुई। मध्य भारत में मालवा की अधित्यका का उल्लेख ऐसे विशाल विस्तार वाले मैदानों के रूप में हुआ है जिन पर विचित्र आकृतियों की चौरस शिखर वाली पहाड़ियाँ बिखरी हुई हैं और जो चिपचिपी काली मिट्टी से आच्छादित हैं। इस दोमट जमीन में नमी धारण करने की-

असाधारण क्षमता है और इसीलिए यह अपनी उर्वरता के लिए काफी विख्यात है (ओ.एच.के.स्पेड)।

मालवा संस्कृति के स्थल मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र दोनों राज्यों में पाए गए हैं। खोदे गए सर्वाधिक ज्ञात स्थल हैं- एरण, नगडा और नवादाटोली मध्य प्रदेश में तथा इनामगांव महाराष्ट्र में।

जिन स्थलों के बारे में हमें अच्छी जानकारी मिली है उनमें नवादाटोली एक है क्योंकि इस स्थल की खुदाई बड़ौदा विश्वविद्यालय और दक्कन कालेज द्वारा तीन मौसमों तक चली और इनके पूर्ण विवरण उपलब्ध हैं।

इस स्थल की पाषाण-कांस्य अवधि को चार चरणों में बांटा जा सकता है : प्रथम चरण बनास संस्कृति के काला-और लाल मृदभांड का है, दूसरा पीला और सफेद रंग वाले मृदभांड का, तीसरा चरण लाल पर काले रंग वाले मृदभांडो का और चौथा चमकीले लाल पात्रों से जुड़े फीके लाल रंग वाले मृदभांडों का। लेकिन, इन सभी चरणों में मालवा के मृदभांडों की उपस्थिति है। लोगों की भौतिक संस्कृति में भी कोई अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता।

नवादाटोली के लोगों ने नर्मदा के विलक्षण पुनरुत्थान की अवधि में बने सबसे ऊंचे चबूतरे को अधिकार में लिया था और उस पर साधारण, गोल और आयताकार पंकवाली दीवारों के कुटीर बनाए थे जिनके लिए किसी नींव की ज़रूरत नहीं थी। दीवारें आमतौर पर विखंडित बांस के परदों की होती थीं और उन पर पंक का लेप लगाया जाता था। फर्श बनाने के लिए गोल रोड़ियाँ और कंकड़ियाँ चिकनी मिट्टी से कूट-कूट कर भरे जाते थे और उन पर चूने का लेप लगाया जाता था। लकड़ी के खंभे छत को आधार प्रदान करते थे। खाना पकाने के लिए घरों में चूल्हे बने होते थे। उपलब्ध योजना से संकेत मिलता है कि नवादाटोली का पाषाण-कांस्यकालीन गांव एक नाभिकीय अधिवास था और संकालिया के आकलन के अनुसार, आरंभिक दौर में वहाँ 200 लोग थे। एरण और नगडा के विपरीत, नवादाटोली का पाषाण-कांस्यकालीन अधिवास किलेबंद नहीं प्रतीत होता है।

प्रागैतिहासिक नवादाटोली वासी नाना प्रकार के सुंदर और अत्यन्त परिष्कृत मृणपात्रों (मृदभांडो) का उपयोग करते थे। सबसे प्रमुख मृदभांड मालवा के बरतन थे जो उस स्थल के कुल मृणपात्र उत्पादन का एक तिहाई था। यह पांडु अथवा नारंगी लेप पर काला या भूरा रंग में रंजित चित्रित मृदभांड था, लेकिन बनावट बहुत परिष्कृत नहीं थी। मालवा बरतन की मुख्य आकृतियाँ लोटों, नालीदार टोंटियों और पीठिका वाले चषकों की थी। क्रीम रंग के पात्र की कुछ नई आकृतियाँ, जैसे मध्यम आकार वाले भंडारण के बरतन और कटोरे मिले हैं, लेकिन लोटा और चषक मालवा के ही समान बरतन थे। मृदभांड को ज्यामितिक (समचतुर्भज और त्रिभुज) तथा प्रकृतिवादी (मानव और पशु) मूल-भावों के साथ सुंदर ढंग से सजाया जाता था।

पत्थर के औज़ार भारी संख्या में मिले हैं। इनमें कुंद किए गए पृष्ठ वाले चाकू, दांतदार और समानांतर पार्श्व वाले फलक, कलाबाज़ी के झूले और अर्द्धचन्द्राकार चाप शामिल हैं। तांबे का साक्ष्य कम ही है। फिर भी, नवादालोटी में तांबे के नतोदर तीक्ष्णधार वाले सेल्ट, कड़े, कंटिया, छेनी, बरछे की नोक, वाणाग्र और मध्यशिरा के चिह्न वाली एक तलवार जैसी चीजें मिली हैं। मध्य शिरा वाली तलवार ढाली गयी होगी, जबकि अन्य पदार्थ ठोक-पीटकर आकृति में लाए गए होंगे।

मनके बड़ी संख्या में और विभिन्न धातुओं के मिले हैं। सिर्फ नवादाटोली में ही वे गोमेद, कार्मेसियन, कैएिसडोनी (एक मूल्यवान पत्थर), शीशा, जैस्पर (सूर्यकांतमणि), लाजवर्द, सेलखड़ी और पक्की मिट्टी के हैं। पक्की मिट्टी वाले तकली के चक्कर, पशुओं की लघु मूर्तियाँ इत्यादि भी सांस्कृतिक संग्रह के हिस्से थे। कुछ लघु मूर्तियाँ- जैसे पक्की मिट्टी की लघु नारी (देवी मां) की मूर्तियाँ- कर्मकांडी लगती हैं। घड़ों पर वेदियों और पशुओं के मूल भाव वाले चित्रण भी किसीहद तक नवादाटोली वासियों के धार्मिक विश्वासों का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

इसी प्रकार लोगों की आहार संबंधी आदतों के भी साक्ष्य मिले हैं। मूंग, मसूर, मटर, तीसी, बेर और आंवला के साथ-साथ लोग गोमांस, मृगमांस और सूअर का मांस भी खाते थे। गेहूं, जौ, और चावल के झुलसे दाने भी मिले हैं, लेकिन सिर्फ द्वितीय और चतुर्थ चरणों के ही।

ऐसा प्रतीत होता है कि मालवा संस्कृति की शाखाएँ ताप्ती को पार कर भीमा और घोड़ की एक सहायिका तक पहुंच चुकी थी। चंदोसी, सोनगांव और इनामगांव में यह जोरवे संस्कृति की पूर्ववर्ती प्रतीत होती है। नवादाटोली में अवधि III में जोरवे नामक एक नई बनावट मिली है। यह एक धूसर-सा काला मृदभांड है। इसमें धातु की अंगूठी समेत मजबूत पृष्ठाधान का कोर और महाराष्ट्र में कुछ स्थलों के मालवा बरतन अन्तर-प्रान्तीय सांस्कृतिक संबंधों का संकेत देते है। ऐसे संबंध नृजातीय और राजनीतिक भी रहे होंगे।

संकालिया के अनुसार मालवा संस्कृति की उत्पत्ति पश्चिम एशिया के सांस्कृतिक प्रभाव में खोजी जा सकती है। उनका ध्यान चौरस अथवा बिना चौरस सतह के आधार वाले अनेक प्रकार के कटोरों की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने उन कटोरों की तुलना यूरोपीय समाज के शैंपेन और ब्रांडी के प्यालों से की है। हड़प्पा के स्थलों में ऐसा कुछ नहीं मिलता, यद्यपि अब तक कालीबंगन के प्राक-हड़प्पा स्तरों से एक नमूना ऐसा मिला है लेकिन यह पूरी तरह विलुप्त हो जाता है और ईरानियों से संपर्क के बाद ही प्रकट होता है।

ये आरंभिक ईरानी और पश्चिम एशियाई संस्कृतियों के विशेष लक्षण हैं और नवादाटोली के ये पदार्थ आकृति और अभिकल्प में उनसे भारी समानता रखते हैं। संकालिया का विचार है कि नवादाटोली की संस्कृतियाँ आंशिक रूप में ही सही, ईरानी संस्कृतियों से व्युत्पन्न अथवा प्रेरित थीं। फिर भी धावलिकर मालवा संस्कृति के प्रवर्तकों को वैदिक काल के आर्यों से जोड़ते हैं।

कार्बन-14 के अनुसार मालवा संस्कृति की अवधि ईसा पूर्व 1700-1400 वर्ष के बीच की है।

6.4.4 जोरवे संस्कृति

हड़प्पा संस्कृति के बाद जोरवे संस्कृति भारत की सर्वाधिक ज्ञात प्रागैतिहासिक संस्कृति है। इसका नामकरण जोरवे स्थल के आधार पर हुआ है। इस संस्कृति के अन्य प्रतिनिधि-मूलक स्थल हैं- नेवासा, डेमाबाद, इनामगांव, चंदोली, नासिक, सोनगांव, इत्यादि।

जोरवे संस्कृति महाराष्ट्र में आद्यतम संस्कृतियों में प्रथम नहीं थी लेकिन ईसा पूर्व 1200 वर्षों तक यह कृष्णा-कावेरी की घाटियों में फैल गयी थी और इसने दक्षिण में आंध्र-कर्नाटक और उत्तर में मालवा की आरंभिक सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को या तो बाहर कर दिया था अथवा अपने में समाहित कर लिया था।

नेवासा और इनामगांव में व्यापक खुदाइयाँ की गयी हैं। वहाँ के घर वर्गाकार अथवा आयताकार थे जिनकी मिट्टी की दीवारें काठ के खंभों पर आधारित थीं और ये खंभे फर्श में नियमित अंतराल पर भीतर डाले गए थे। इनके छाजन संभवतः बांस की चटाइयों, सूखे पत्तों इत्यादि के थे जिन्हें मिट्टी से ढक दिया जाता था। ये आरंभिक जोरवे गृह खासे बड़े आकार वाले थे। कुछ घरों के खुले प्रांगण होते थे जहाँ अनाज की पिसाई होती थी। इनामगांव में जोरवे के बस्तियों में मिट्टी और पत्थर की क़िलेबंदी के साथ समृद्ध गांवों के सारे चिह्न मौजूद थे।

जहाँ तक जोरवे के मृदभांडों का प्रश्न है, वे महीन बनावट के और अच्छी तरह पके होते थे। इनकी सतह द्युतिहीन लाल अथवा नारंगी रंग की थी जिस पर काले रंग के ज्यामितिक अभिकल्प चित्रित थे। लेकिन, इनकी आकृतियाँ सीमित थीं। मुख्य आकृतियों में चौड़े मुंह वाले घड़े, औंधे हुए कटोरे और गोलाकार खाकावाले ऊंची गर्दन के घटक शामिल हैं। प्रकाश और नवासा में सफेद रंग में चित्रित अभिकल्प वाले फीके धूसर मृदभांड के प्रतीक के रूप में लोटे, कटोरे

और गोलाकार बरतन पाए गए हैं। इसी प्रकार डेमाबाद, चंदोली, सोनगांव, प्रकाश और इनामगांव में मालवा के मृदभांडों के अनेक रूप और बनावटें मिली हैं।

ताम्र-पाषाण युग के निवासी आहार के लिए जौ, गेहूँ, मसूर, मटर और कभी-कभार चावल उपजाते थे। सीपी और घोंघे भी खाए जाते थे। जानवरों में हाथी, भैंस, गेंडा, सांभरों और हिरणों की प्रधानता थी।

पत्थर का ढेर कुछ परिष्कृत डोलराइट (बैसाल्ट की तरह एक आग्नेय पत्थर) और एक कैल्सडनी के विपुल उत्पादक फलकों के उद्योग से बना था। ताम्र पदार्थों में कड़े, मनके, फलकें, छेनियां, कुठारें, फीका मध्य शिरा और श्रृंगिका वाली बरछी की नोक, एक छोटा पात्र और कुछ मिले-जुले पदार्थ शामिल थे। इनामगांव में नाव की आकृति का तांबा गलाने का एक भट्ठा पाया गया है।

गोमेद, कारनेसियन, सूर्यकांत (जैस्पर) और कैल्सेडनी, सोना, तांबा और हाथी दांत के आलंकारिक मनके उपयोग में लाए जाते थे। तांबे के कड़े और पाजेब तथा सोने के कुंडलित कान के ज़ेवर इनामगांव में पाए गए हैं।

अनेक कब्रिस्तानों की सूचना मिली है। वयस्क और बच्चे दोनों उत्तर की तरफ सिर करके दफ़नाए जाते थे। वयस्कों को फैलाकर और बच्चों को हस्तनिर्मित लाल/धूसर मिट्टी के कलशों में सटाकर रखा जाता था। टोंटीदार मटकों और कटोरों की उपस्थिति से ऐसा संकेत मिलता है कि मृतकों को परलोक के लिए आहार और पेय दिए जाते थे।

कार्बन-14 की तिथियों से ज़ाहिर होता है कि जोरवे संस्कृति ईसा पूर्व लगभग 1400-1100 वर्ष के बीच कायम रही, हालांकि इनामगांव में इसका अंतिम चरण काफी आगे तक चलता रहा।

6.4.5 पूर्वी ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ

पूर्वी ताम्र-पाषाण संस्कृतियाँ ईसा के लगभग 1600 वर्ष पूर्व उदित हुईं और ईसा के लगभग 800 वर्ष पूर्व तक चलती रहीं। इसकी खुदाई वाले महत्वपूर्ण स्थल हैं- चिरांद, रोजर ढिबी, मषिषदल, भरतपुर और चिरांद। इनके भंडारों को तीन अवधियों में बांटा गया है: प्रथम अवधि नवपाषाण की, दूसरी ताम्रपाषाण की और तीसरी अवधि लोहे के आविर्भाव की है।

प्रथम अवधि से जुड़े अनेक शिल्प-सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें सेल्ट, खुरचनी, छेनी, हथौड़े, सुइयां, बेधनियाँ, बेधक, सुतारी, शलाका और वाणाग्र शामिल हैं। हड्डियों से गले के चेन का लटकन, कर्णफूल, कड़ा, चक्रिका और कंघियाँ भी बनाई जाती थीं।

प्रथम और द्वितीय अवधियों से चक्कियों, कंदुकों और मूसलों के अतिरिक्त चार पिसे हुए पत्थर के कुठार भी पाए गए। पत्थर के औजार बिल्लौर, असिताश्म और कणाश्म (ग्रेनाइट) के हैं। एक विकसित लघुपाषाणीय उद्योग की सूचना मिली है। इस उद्योग में समानांतर पार्श्व वाले फलक, खुरचनी, वाणाग्र, दांतेदार बेधनी, ल्यूनेटस, बेधक इत्यादि बनाए जाते थे। इनकी कच्ची सामग्रियों में प्रमुख थे : कैलिसडनी, चर्ट, गोमेद और सूर्यकांतमणि (जैस्पर)।

मृदभांडों के प्रधान प्रतिरूप लाल बरतन हैं, हालांकि जैस्पर-धूसर, काले और काला-लाल बरतन भी मिलते हैं। मुख्य आकृतियाँ हैं: संकीर्ण गर्दन वाले टोंटीदार कलश, अनेक प्रकार के कटोरे, स्तंभ वाले कटोरे, आधार वाले प्याले, नालीदार टोटियाँ, चम्मच इत्यादि। बरतनों के पकाए जाने पर उन्हें विशेषकर धूसर बरतनों पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ और संकेद्रित वृत्तों के रैखिक अभिकल्प लाल गैरिक रंग में चित्रित किए जाते थे।

लोग गेहूं, चावल, मसूर और मूंग उपजाते थे। नदियों से प्राप्त छोटे जंतुओं के खोल और घोंघे भी खाए जाते थे। हाथी, गैंडा, भैंसा, बैल, नर मृग और हिरण के अवशेष भी पाए गए हैं।

द्वितीय अवधि में लाल तथा काले-और-काले मृदभांडों की उपस्थिति मिलती है। मुख्य प्ररूप हैं- टोंटीदार लोटा, होंठदार कटोरे और तंग गला वाले चषक। तांबे के आविर्भाव को छोड़कर अन्य उद्योग द्वितीय अवधि जैसे ही हैं। अवधि II में लोहे का आविर्भाव होता है।

रोजर ढिबी के वस्तुओं को जिन चार अवधियों में बांटे गए हैं उनमें प्रथम दो ताम्रपाषाणीय हैं जिनकी विशेषता है हस्तनिर्मित मोटे धूसर बरतन, पक्के पर बने लाल बरतन और काला-सह-लाल बरतनों का आविर्भाव। चमकीले लाल बरतन और नालीदार टोंटी वाले कटोरे सिर्फ अवधि II से ही मिले हैं। मुख्य आकृतियाँ हैं: भंडारण के मटके, आधारवाली थालियाँ, टोंटीदार कलश, आधार वाले कटोरे, लोटे, ऊंची गरदन वाले मटके और चिलमचियाँ। नुकीले तीर, एक अंगूठी, कड़े और एक ऐंटिमोनी (चांदी जैसी एक उजली धातु) की शलाका जैसे तांबे के पदार्थ भी पाए गए हैं। अवधि I में पत्थर की पपड़ियाँ, खुरचनी इत्यादि विरल हैं लेकिन अवधि II में उनकी बहुतायत है।

मषिदल में बड़ी मात्रा में झुलसा चावल, पत्थर के फलक और ल्यूनेट, तांबे का चौरस सेल्ट, पत्थर और सिलखड़ी के मनके, हड्डी की कंघियाँ और पत्थर के चतुष्फलकीय बाट पाए गए हैं। मषिदल में अवधि I की मृत्तिका-परंपराएँ रोजर ढिबी से मेल खाती हैं। अवधि I में लोहे का आविर्भाव होता है।

प्रगति जाँच अभ्यास 2

क. रिक्त स्थान भरें:

(i) ..... और ..... वे दो मुख्य स्थल हैं जहाँ सम्यक रूप में खुदाइयाँ हुई हैं, यद्यपि इस संस्कृति के पचास से अधिक स्थल बनास नदी की घाटी और दक्षिण-पूर्व राजस्थान में ज्ञात हुए हैं।

(ii) जैसा कि कार्बन-14 की तिथियों से पता चलता है, मध्य भारत में पाषाण-कांस्य युगीन संस्कृतियों में..... संस्कृति सबसे पूर्व की है और उसकी अवधि ईसा के लगभग 2000 से 1800 वर्ष पूर्व के बीच थी।

(iii) मालवा संस्कृति के स्थल ..... और ..... दोनों राज्यों में पाए गए हैं।

(iv) नेवासा, डेमाबाद, इनामगांव, चंदोली, नासिक आदि ..... संस्कृति के प्रतिनिधि स्थल हैं।

(v) चंदोसी, सोनगांव और इनामगांव में..... संस्कृति जोरवे संस्कृति की पूर्ववर्ती प्रतीत होती है।

ग. पूर्वी ताम्रपाषाण संस्कृतियों के किन्हीं तीन महत्वपूर्ण प्रतिनिधि स्थलों के नाम बताएँ।

6.5 उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत और कश्मीर के नवपाषाण अधिवास

पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में यह सिलसिला घालीगाई गुफा और तिमारगढ़, अलीग्राम, इत्यादि अनेक समाधि-स्थल, जो सभी स्वात में हैं, की खुदाईयों से शुरू होता है। घालीगाई ग़ुफा में निम्नस्तरीय हस्तनिर्मित खुरदुरे मृणपात्र मिले हैं। आलचिंस के अनुसार यह स्पष्ट साक्ष्य मिला है कि घालीगाई की अवधि IV में गंधारन समाधि-स्थलों से जुड़े एक नए तत्त्व का समावेश हुआ जिसमें तांबा और कांस्य के उपयोग, विशिष्ट दाह-संस्कार और आग की पूजा पद्धति में अच्छी-खासी प्रगति हुई जैसा कि कुछ दाह-संस्कारों से ज़ाहिर होता है। भौतिक संस्कृति के समानांतर काकेशस, उत्तर ईरान और दक्षिण मध्य एशिया में मिलते हैं।

कश्मीर में सर्वाधिक ज्ञात नवपाषाणीय स्थल बुर्जहोम में है। बुर्जहोम में मिले ढेर को चार अवधियों में बांटा गया है जिसमें प्रथम दो नवपाषाणीय, तृतीय महापाषाणीय और चतुर्थ आरंभिक इतिहास का है।

अवधि I की सर्व प्रमुख विशेषता है गर्त-निवास/वृत्ताकार/अंडाकार और आयताकार/वर्गाकार सदृश दोनों प्रकार के-

गर्त उपयोग में लाए जाते थे। इन गत्तों से काठ-कोयला के भस्म और ठीकरे पाए गए हैं। परिष्कृत कुठारें, फसल काटने और कूटने वाले यंत्र, मार्जक, छेनियां और गदा के सिरे उपयोग में लाए जाने वाले मुख्य पत्थर-निर्मित औज़ार थे। हड्डी के औज़ार वाले उद्योग में मछली मारने के भाले, सूइयाँ, सुतारी, बरछियों के सिरे, वाणाग्र, छेरे, खुरचनी इत्यादि शामिल थे। अवधि I में समाधि-स्थल नहीं मिले हैं। ये पात्र चटाईयों पर बनते थे और यदा-कदा उत्कीर्ण और खांचेदार अभिकल्पों से सजाए जाते थे।

अवधि II में पंक और कच्ची ईंटों से बने घरों और मृणपात्रों की कुछ नई आकृतियाँ मिलती हैं। इन नई आकृतियों में खोखले स्टैंड वाली थालियाँ, गोलाकार बरतन, मर्तबान, पतली छड़ी और चिमनी की आकृति वाले कलश शामिल हैं। मृणपात्र (मृदभांड) अभी भी हाथ से बने होते थे और इस अवधि के अंत में ही गोमेद और कार्नेलियन के 950 मनकों वाला लाल बरतन चाक पर बनाया गया। पत्थर और हड्डी के उद्योग में अवधि I से ही निरंतरता पाई जाती है हालांकि अवधि-II के औज़ार अधिक परिष्कृत और भारी संख्या में बनते थे।

बुर्जाहोम की नवपाषाणीय संस्कृति का युग ईसा के लगभग 2400-1500 वर्ष पूर्व के बीच है।

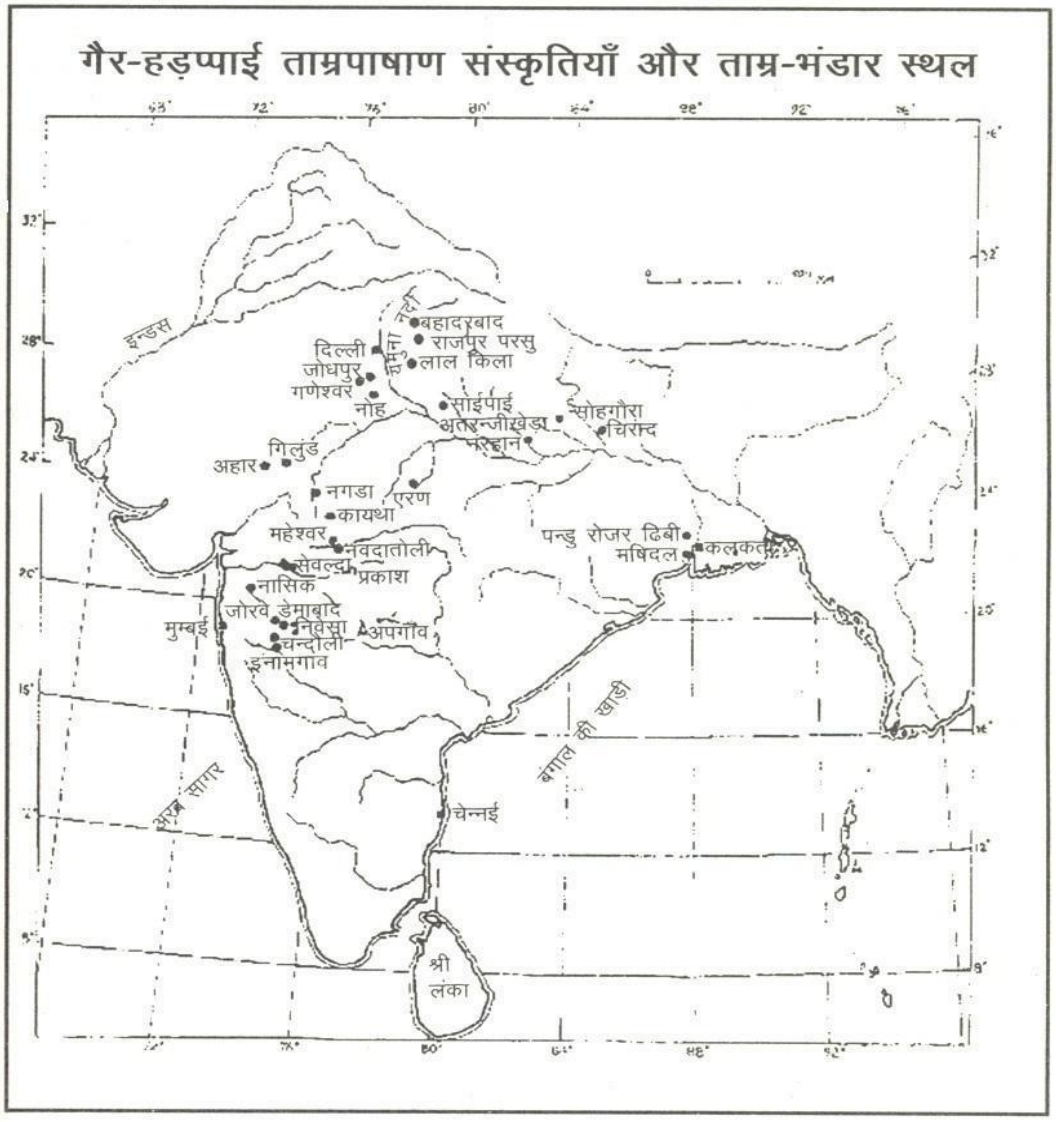

(स्रोत: वी.के. जैन, *भारत का प्रागैतिहास और आद्य-इतिहास,* 2008)

6.6 दक्षिण की नवपाषाण-ताम्रपाषाण संस्कृति

ब्रह्म गिरि, मास्की, पिक्लीहल, सनगनाकल्लु, टेक्कलकोट, हल्लूर, उतनूर, टी. नारसीपुर और कुपगल जैसे स्थलों पर की गयी खुदाइयों से दक्षिण की नवपाषाणीय एवं ताम्रपाषाणीय संस्कृति की झलक मिलती है।

जैसा कि हल्लूर, टेक्कलकोट और सनगनाकल्लु की खुदाइयों से ज्ञात होता है, झोपड़े आम तौर पर वृत्ताकार, निम्न पंकिल फर्श समेत एक कमरे वाले होते थे और उन्हें बांस के टुकड़ों के पर्दे और शंकुरूप छपाई वाले छप्पर से सुरक्षित बना दिया जाता था। फर्श यदा-कदा सफेद चूने से पोते जाते थे। भंडारण के मर्तबान और चूल्हे ऐसे घरों से सामान्य प्राप्तियाँ हैं। तरह-तरह की आकृति वाले कटोरे- छिछले होंठदार, मूठवाले, टोंटीवाले, खोखले पाद वाले- स्टैंडवाली थालियाँ और छेदित पात्र नवपाषाण के प्रथम चरण के मृणपात्रों (मृदभांड) की मुख्य आकृतियाँ हैं। इस चरण के सारे मृणपात्र (मृदभांड) हस्तनिर्मित हैं। प्रथम चरण के गैर-पॉलिशदार धूसर और भूरे (मृदभांड) द्वितीय चरण में विलुप्त हो जाते हैं और पॉलिशदार भूरा मृदभांड भी विरले ही मिलता है। द्वितीय चरण में काले अथवा बैंगनी रंग में चित्रित फीके लाल बरतनों अथवा कभी-कभार चित्रित किए गए काला-और-लाल बरतनों की विशेषता रही है।

औजारों में कुठार सर्वाधिक प्रचलित हैं। अन्य प्रकार के औजारों में बसूले, खुरचनी, छेनी, पच्चर, गैंती, बेधक, हथौड़े, ढेलवांस, चक्की इत्यादि शामिल हैं।

उपलब्ध कार्बन-14 की तिथियाँ दर्शाती हैं कि दक्षिणी नवपाषाण का समय-विस्तार ईसा के लगभग 2,500 – 1,000 वर्ष पूर्व तक है।

6.7 उपसंहार

पहली सदी ईसा पूर्व में विभिन्न संस्कृतियों का लोहा से परिचय हुआ। उदाहरणस्वरूप: ऊपरी गंगा घाटी की गैरिक मृदभांड संस्कृति और प्रायद्वीपीय भारत का महापाषाण-उद्योग। इस प्रकार विभिन्न समुदायों के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान के काल की भी शुरुआत हुई जब उसी अवधि में भारतीय आधुनिक गाँव की आधारशिला स्थापित हो रही थी।

प्रगति जाँच अभ्यास 3

क. कश्मीर स्थित सर्वाधिक ज्ञात नवपाषाण स्थल का नाम बताएँ।

ख. उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत स्थित स्वात घटी के किसी दो समाधि-स्थलों का नाम बताएँ।

ग. दक्षिण की नवपाषाण-ताम्रपाषाण संस्कृतियों के दो प्रतिनिधि स्थलों के नाम बताएँ।

घ. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें:

(i) कायथा संस्कृति

(ii) मालवा संस्कृति

(iii) जोरवे संस्कृति

(iv) पूर्वी ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ

6.8 सारांश

- ताम्रपाषाण संस्कृतियों का अभ्युदय ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के दौर में हुआ। सीमित मात्रा में ताम्र और भारी मात्रा में पत्थर की धारों का उपयोग इसकी मुख्य विशेषता थी।
- इन संस्कृतियों में की विषमता मौलिक न होकर मुख्यतः मृणपात्रों (मृदभांडों) तक सीमित थी।
- ताम्रपाषाण संस्कृतियों की पहचान भौगोलिक स्थितियों के आधार पर हुई है।
- पश्चिमी, मध्य और पूर्वी भारत की ताम्रपाषाण संस्कृतियों की कुछ समान विशेषताएँ हैं। जैसे मृदभांड जो अधिकतर काले-एवं-लाल हैं और अत्यधिक विशिष्ट फलक उद्योग।
- कश्मीर में सर्वाधिक ज्ञात नवपाषाणीय स्थल बुर्जहोम में है।
- ब्रह्म गिरि, मास्की, पिक्लीहल, सनगनाकल्लु, टेक्कलकोट, हल्लूर, उतनूर, टी. नारसीपुर और कुपगल जैसे स्थलों पर की गयी खुदाइयों से दक्षिण की नवपाषाणीय एवं ताम्रपाषाणीय संस्कृति की झलक मिलती है।

प्रगति जाँच अभ्यासों के उत्तर

प्रगति जाँच अभ्यास 1

क. (iii)

ख. (i) जोधपुर, मितथाल (ii) नसीरपुर, बहादरबाद

प्रगति जाँच अभ्यास 2

क. (i) अहार और गिलुंड (ii) कायथा (iii) मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र (iv) जोरवे (v) मालवा

ख. चिरांद, रोजर ढिबी, मषिदल

प्रगति जाँच अभ्यास 3

क. बुर्ज होम

ख. तिमारगढ़, अलीग्राम

ग. ब्रह्मगिरी, मस्की

घ. संक्षिप्त टिप्पणी

(i) देखें खंड 6.4.2

(ii) देखें खंड 6.4.3

(iii) देखें खंड 6.4.4

(iv) देखें खंड 6.4.5